अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका

फ़रवरी २०२४

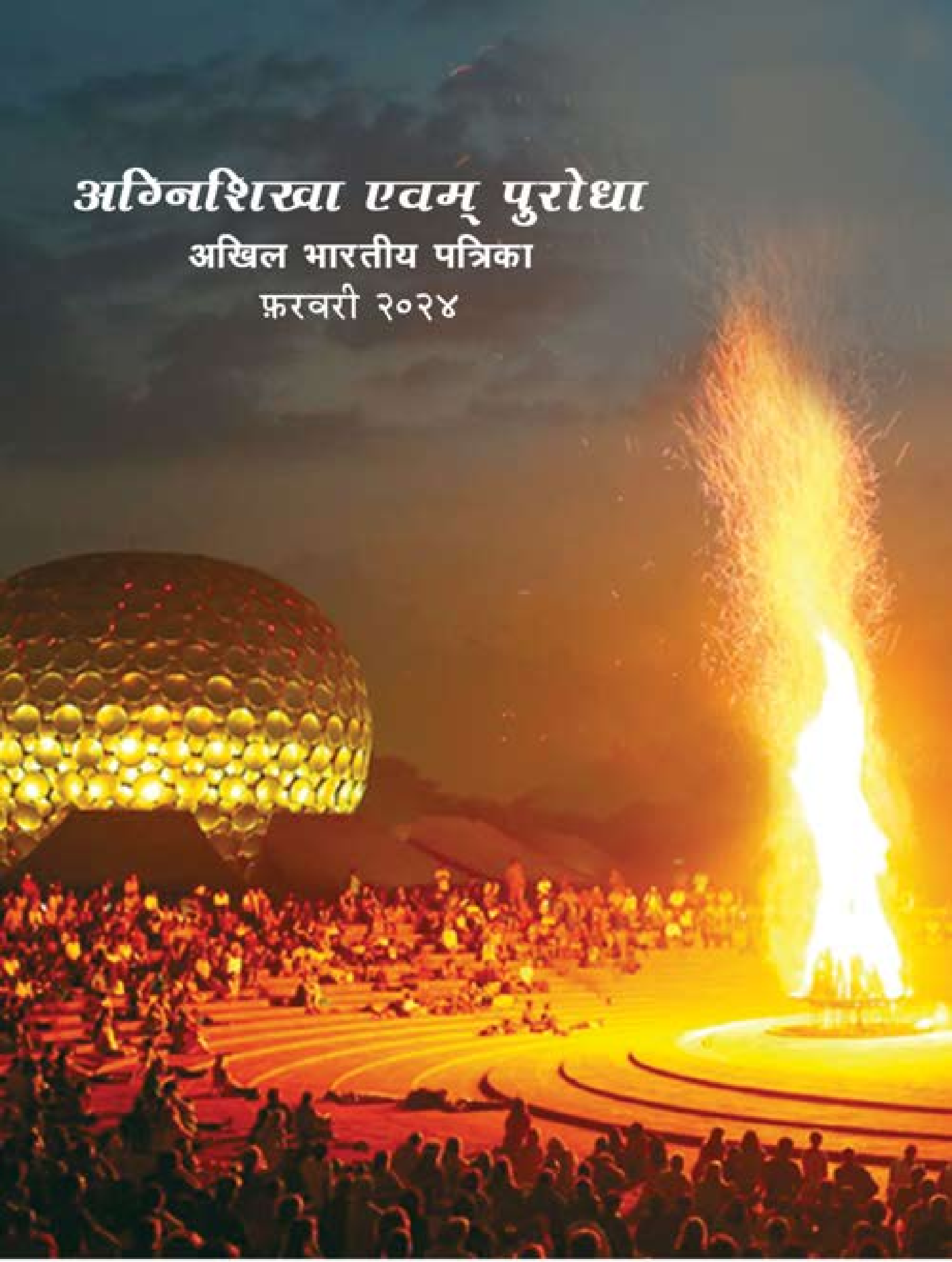

ओरोवील

(वह नगरी जिसकी धरती को आवश्यकता है)

अग्निशिखा एवम् पुरोधा फ़रवरी २०२४ वर्ष १, अंक ७, पूर्णांक ७

विषय-सूची

वह नगरी जिसकी धरती को आवश्यकता है

(श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय ३
ओरोवील का जन्म ८
ओरोवील की प्रगति १२
सच्चा ओरोवीलवासी बनने के लिए १८
ओरोवील का कार्य २१
ओरोवील के लिए सन्देश २५
यूनेस्को के लिए सन्देश ३१
ओरोवील की आत्मा ३२
एक स्वप्न ३७

पुरोधा

दैनन्दिनी ३८
‘दिव्य शरीर में दिव्य जीवन’ : गुह्य ज्ञान नवजातजी ४१
फूलों जैसे हम बन जायें (कविता) शारदा गोयनका ४३
शाश्वत ज्योति (२) चित्रा सेन (अनु. वीणा) ४४
पल-पल सीखना वन्दना ४७
वक़्त की ज़रूरत (कविता) श्री ओमप्रकाश मेहरा ४९

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की ‘अग्निशिखा’ का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

मुखपृष्ठ

मातृमन्दिर की पृष्ठभूमि के साथ,
ओरोवील के जन्मदिवस—२८ फ़रवरी—पर प्रज्वलित उत्सवाग्नि।

सन्देश

... करने-लायक़ सबसे अच्छी चीज़ यह है कि अपने अन्दर अपनी सभी गतिविधियों के मूल को पहचानो—वे जो सत्य के प्रकाश से आती हैं और वे जो पुरानी जड़ता और मिथ्यात्व से आती हैं—ताकि तुम पहली को स्वीकार और दूसरी को अस्वीकार या उसका त्याग कर सको।

अभ्यास के साथ तुम इनमें अधिकाधिक स्पष्टता के साथ फ़र्क करने लगते हो, किन्तु यह सामान्य नियम बना सकते हो कि वह सब जो असामञ्जस्य, अव्यवस्था और जड़ता की ओर प्रवृत्त होता है वह मिथ्यात्व से आता है और जो कुछ ऐक्य, सामञ्जस्य, व्यवस्था और चेतना की ओर प्रवृत्त होता है वह 'सत्य' से आता है।

यह केवल एक इशारा है कि इस मार्ग पर पहला क़दम कैसे उठाया जाये, उससे ज़्यादा कुछ नहीं।...

१३ जनवरी १९६५ **श्रीमाँ**

सम्पादकीय : श्रीमाँ ने ओरोवील "Auroville" जिसे उन्होंने उषा नगरी—"City of Dawn"—कहा है, उसके बारे में यत्र-तत्र बहुत लिखा और कहा है। प्रत्येक अपनी समझ के अनुसार उसकी व्याख्या करता है। इसका उद्घाटन २८ फ़रवरी १९६८ को हुआ था।

इस अंक में हमने ओरोवील के बारे में माँ द्वारा कही और लिखी गयी बातों का एक संकलन तैयार किया है ताकि लोग अधिक स्पष्टता से समझ सकें कि ओरोवील का ध्येय क्या है और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह कि भावी समाज में उसका स्थान क्या है।

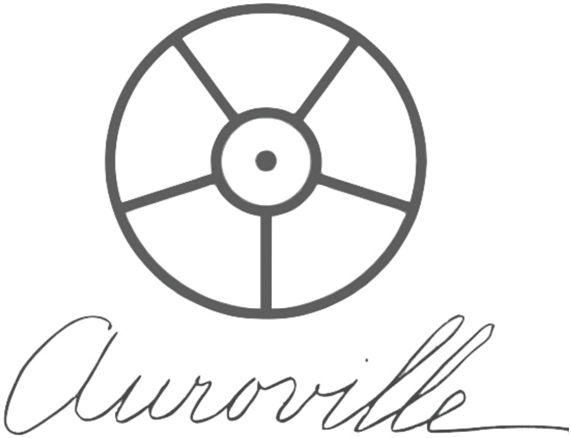

केन्द्र में जो बिन्दु है वह 'एकत्व' का, 'परम पुरुष' का प्रतिनिधित्व करता है;

अन्दर का वृत्त सृष्टि का प्रतीक है, शहर (ओरोवील) की अवधारणा है;

पंखुड़ियाँ अभिव्यक्त करने, चरितार्थ करने की शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२९

(ओरोवील के बारे में एक शिष्य के साथ हुए
श्रीमाँ के वार्तालाप का एक अंश)

व्यक्ति के अन्दर पूरी तरह से पारदर्शक सच्चाई होनी चाहिये। सच्चाई का अभाव ही वर्तमान कठिनाइयों का कारण है।

सच्चाई का अभाव सभी व्यक्तियों में है। कुल मिला कर पृथ्वी पर शायद सौ सच्चे-निष्कपट लोग होंगे। स्वयं मनुष्य का स्वभाव ही उसे निष्कपट नहीं रहने देता। यह बड़ी जटिल चीज़ है, क्योंकि व्यक्ति निरन्तर अपने-आपको ही छलता रहता है, सत्य को स्वयं से छुपाता फिरता है और अपने लिए बहाने ढूँढ़ता रहता है। योग है वह पथ जिस पर चल कर मनुष्य अपनी सत्ता के प्रत्येक भाग में सच्चा-निष्कपट बन सकता है।

सच्चा-निष्कपट होना कठिन है, लेकिन व्यक्ति कम-से-कम मानसिक रूप से तो सच्चा बन ही सकता है—ओरोवीलवासियों से इसी की माँग की जाती है।

'शक्ति' यहाँ है, इतने ठोस रूप में उपस्थित है जितनी पहले कभी नहीं थी; मनुष्य का कपट ही उसे नीचे उतरने से और उसका अनुभव करने से रोकता है। जगत् मिथ्यात्व में गहरे धँसा हुआ है। मनुष्यों के बीच के सम्बन्ध अभी तक तो केवल मिथ्यात्व और छल-कपट पर टिके हुए हैं। राष्ट्रों के बीच कूटनीति भी झूठ पर आधारित है। वे दावा करते हैं कि वे शान्ति चाहते हैं और दूसरी ओर अपने-आपको हथियारों से लादते रहते हैं। मनुष्यों में तथा देशों के बीच केवल पूर्ण निष्कपटता ही एक रूपान्तरित जगत् को उतरने की स्वीकृति देगी।

इस परीक्षण को करने के लिए ओरोवील है पहला प्रयास। अगर मनुष्य रूपान्तर के लिए प्रयास करने की हामी भर दे और सच्चाई तथा निष्कपटता की खोज में लग जाये तो नूतन जगत् जन्म ले लेगा—यह किया जा सकता है। पशु से मनुष्य तक पहुँचने में सदियाँ लग गयीं; आज मनुष्य, मन की बदौलत, चीज़ों की गति तेज़ कर सकता और मानव के ऐसे रूपान्तर के लिए संकल्प कर सकता है कि वह स्वयं 'भगवान्' बन जाये।

मन की सहायता और आत्म-विश्लेषण के द्वारा वह पहले स्तर पर पहुँच सकता है; उसके बाद प्राणिक आवेशों को रूपान्तरित करना होगा—यह बहुत अधिक कठिन है; फिर, सबसे अधिक, हमारे शरीर के प्रत्येक

कोषाणु को सचेतन बनना होगा। मैं यहाँ इसी कार्य में लगी हुई हूँ। यह मृत्यु पर विजय की अनुमति देगा। यह एक और कहानी है; वह भविष्य की मानवजाति होगी, शायद इसमें सदियाँ लगें, शायद यह जल्दी हो जाये। सब कुछ मनुष्यों पर, मानवजाति पर निर्भर करेगा।

इस लक्ष्य पर बढ़ने का पहला क़दम है—ओरोवील।

२८ फ़रवरी १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

... हमें शरीर त्याग देने के लिए नहीं, ज़्यादा अच्छा बनाने के लिए दिया गया है। और ठीक यही चीज़ ओरोवील के लक्ष्यों में से एक है। मानव शरीर को सुधारना, पूर्ण बनाना है, और उसे अतिमानव शरीर बनाना है जो मनुष्य से उच्चतर सत्ता को अभिव्यक्त करने-योग्य हो सके। और निश्चय ही अगर हम उसकी अवहेलना करें तो यह नहीं हो सकता। यह हो सकता है सम्यक् शारीरिक प्रशिक्षण, शारीरिक क्रियाकलाप द्वारा—शरीर के व्यायामों द्वारा—जो छोटी-मोटी निजी ज़रूरतों या तुष्टियों के लिए नहीं, शरीर को उच्चतर सौन्दर्य और चेतना को अभिव्यक्त करने में सक्षम बनाने के लिए किया जाये। इसी कारण, शारीरिक प्रशिक्षण का ऊँचा स्थान है, और वह उसे देना चाहिये।... और यह शारीरिक प्रशिक्षण पूरी जानकारी के साथ करना चाहिये, असाधारण, अद्‌भुत चीज़ें करने के लिए नहीं, बल्कि शरीर को उच्चतर चेतना को अभिव्यक्त करने-योग्य काफ़ी मज़बूत और लचीला बनाने की सम्भावना देने के लिए।

*

जीवन को पूरी तरह जीकर ही मनुष्य आध्यात्मिक जीवन जी सकता है, कि उसे आध्यात्मिक जीवन में जीना **चाहिये**। परम चेतना को **यहाँ** लाना होगा। शुद्ध भौतिक और जड़-भौतिक दृष्टिकोण से, मनुष्य ही अन्तिम जाति नहीं है। जिस तरह मनुष्य पशु के बाद आया, उसी तरह मनुष्य के बाद दूसरी सत्ता को आना चाहिये। और चूँकि 'चेतना' एक ही है, अतः यह वही 'चेतना' होगी जो मनुष्य के अनुभव पाकर अतिमानव सत्ता के अनुभव प्राप्त करेगी। इसलिए अगर हम चले जायें, अगर हम जीवन को छोड़ दें, जीवन का त्याग कर दें, तो हम यह करने के लिए कभी तैयार न होंगे।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १३, पृ. ३६६, ३५९

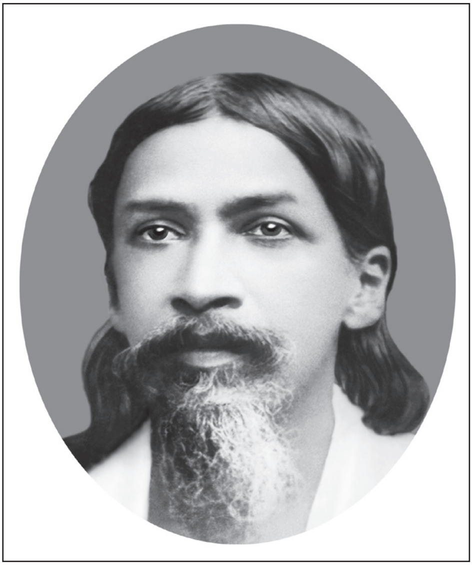

आश्रम और ओरोवील के आदर्श में मौलिक भेद क्या है?

भविष्य के बारे में सोचने के भाव में और भगवान् की सेवा करने के बारे में कोई मौलिक भेद नहीं है।

लेकिन यह माना जाता है कि आश्रम के लोगों ने अपना जीवन योग के लिए अर्पित कर दिया है (निश्चय ही, विद्यार्थी अपवाद हैं जो यहाँ केवल अध्ययन के लिए आये हैं और उनसे यह आशा नहीं की जाती कि उन्होंने अपने जीवन का चुनाव कर लिया है)।

जब कि ओरोवील में प्रवेश पाने हेतु, मानवजाति की प्रगति के लिए सामूहिक परीक्षण करने की सद्भावना काफ़ी है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१९-२०

ओरोवील का जन्म

ओरोवील का घोषणा-पत्र

१) ओरोवील किसी व्यक्ति-विशेष का नगर नहीं है। ओरोवील पूरी मानवजाति का है।

किन्तु इसमें रहने के लिए व्यक्ति को 'भागवत चेतना' का सहर्ष सेवक बनना होगा।

२) ओरोवील अन्तहीन शिक्षा का, सतत विकास एवं एक ऐसे यौवन का स्थल होगा जिसे कभी बुढ़ापा नहीं व्यापेगा।

३) ओरोवील भूतकाल एवं भविष्य के मध्य एक सेतु बनना चाहता है। अन्तर और बाहर की सभी खोजों से लाभान्वित होता हुआ, ओरोवील साहसपूर्वक भविष्य की उपलब्धियों की ओर छलाँग लगायेगा।

४) ओरोवील एक वास्तविक 'मानव एकता' को सजीव रूप में मूर्तिमन्त करने के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक खोजों का स्थान होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०८

> *१) ओरोवील किसी व्यक्ति-विशेष का नगर नहीं है। ओरोवील पूरी मानवजाति का है।*

... मातृमन्दिर 'भागवत चेतना' का प्रतीक है—इस बात में कोई संशय ही नहीं है।

और :

२) ओरोवील एक अन्तहीन शिक्षा, सतत प्रगति, एक ऐसे यौवन का स्थल होगा जिस पर कभी बुढ़ापा नहीं छाता।

और फिर :

> *३) ओरोवील भूतकाल और भविष्य के बीच का सेतु बनना चाहता है। वह सभी अन्वेषणों का लाभ उठाना चाहता है...*

सभी दार्शनिक, आध्यात्मिक, नैतिक, वैज्ञानिक, सभी खोजों का—समस्त भूतकाल का भी लाभ उठाना चाहता है।

... आन्तरिक और बाहरी, सभी खोजों से होता हुआ, ओरोवील साहसपूर्वक भविष्य की उपलब्धियों की ओर छलाँग लगायेगा।

और अन्त में, यहाँ दो व्याख्याएँ लिखी गयी हैं : "ओरोवील ज्ञान की खोज का ऐसा स्थल तथा सच्चा जीवन जीने का ऐसा साधन होगा जो मनुष्य को पारस्परिक समझ तथा सद्‌भावना पर आधारित एकता की ओर बढ़ा ले जायेगा।"

दूसरी व्याख्या है, "वास्तविक मानव-'एकता' को जीवन्त शरीर प्रदान करने का यह बीड़ा उठायेगा।"

तो हम इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन करते हैं—

४) सच्ची 'मानव-एकता' को जीवन्त मूर्त रूप प्रदान करने के लिए ओरोवील भौतिक तथा आध्यात्मिक खोजों का स्थल होगा।

७ फ़रवरी १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

ओरोवील में रहने की शर्तें

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, आवश्यक शर्तें ये हैं :

(१) मानवजाति की मौलिक एकता के बारे में विश्वास होना और उस एकता को मूर्त रूप से चरितार्थ करने के लिए सहयोग देने की इच्छा रखना;

(२) उस सबमें सहयोग देने की इच्छा जो भावी उपलब्धियों को आगे बढ़ा सके।

जैसे-जैसे उपलब्धि आगे बढ़ेगी भौतिक शर्तों को रूप दिया जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०६-०७

ओरोवील के लक्ष्य

प्रभावशाली मानव एकता
धरती पर शान्ति
ओरोवील 'सत्य' की सेवा में लगी नगरी

*

आख़िर एक ऐसा स्थान जहाँ व्यक्ति केवल प्रगति करने और अपने से ऊपर उठने के बारे में ही सोच सकेगा।

आख़िर एक ऐसा स्थान जहाँ व्यक्ति शान्ति में, राष्ट्रों, धर्मों और महत्त्वाकांक्षाओं के संघर्ष और स्पर्धा के बिना रह सकेगा।

आख़िर एक ऐसा स्थान जहाँ किसी चीज़ को यह अधिकार न होगा कि अपने-आपको अनन्य सत्य के रूप में आरोपित करे।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०७, २११

आश्रम और ओरोवील (यूनेस्को-समिति के लिए लिखा गया)

श्रीअरविन्द के अन्तर्दर्शन को मूर्त रूप देने का काम श्रीमाँ को सौंपा गया था। उन्होंने एक नये जगत्, एक नयी मानवजाति, नवीन चेतना को मूर्त रूप देने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए एक नये समाज के सृजन के कार्य का बीड़ा उठाया है। वस्तुओं के स्वभाव के अनुसार, यह एक सामूहिक आदर्श है जिसे चरितार्थ करने के लिए सामूहिक प्रयास की ज़रूरत है ताकि वह समग्र मानवीय पूर्णता के रूप में उपलब्ध हो सके।

श्रीमाँ के द्वारा स्थापित और निर्मित आश्रम इस लक्ष्य को चरितार्थ करने के लिए पहला क़दम था। ओरोवील-योजना दूसरा, अधिक बाहरी क़दम, जो अन्तरात्मा और शरीर, आत्मा और प्रकृति, स्वर्ग और धरती में, मानवजाति के सामुदायिक जीवन में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए इस प्रयास के आधार को प्रशस्त करता है।

*

मैंने हमेशा आश्रम और ओरोवील को समग्र पूर्णता के भाग समझा है। मैं उन्हें पृथक् सत्ताओं के रूप में नहीं देख सकता। माँ, आपने इनमें भेद कैसे किया है? या मेरी ही कहीं पर भूल है? हमारे दृष्टिकोण को मिलाने और पूर्ण बनाने की सख़्त ज़रूरत है न।

आश्रम केन्द्रीय चेतना है, ओरोवील बाह्य अभिव्यक्तियों में से एक है। दोनों स्थानों पर समान रूप से भगवान् के लिए काम किया जाता है।

आश्रम में रहने वालों के पास अपने काम हैं और उनमें से अधिकतर इतने व्यस्त हैं कि ओरोवील को समय नहीं दे सकते।

हर एक को अपने-अपने काम में व्यस्त रहना चाहिये; समुचित व्यवस्था के लिए यह ज़रूरी है। ओरोवील एकता के लिए अभीप्सा करता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२०, २२१

आश्रम में और ओरोवील में क्या फ़र्क है?

आश्रम प्रणेता, प्रेरक और पथ-प्रदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभायेगा।

ओरोवील सामूहिक सिद्धि के लिए प्रयास है।

*

यह सच है कि ओरोवील में रहने के लिए चेतना को बहुत समुन्नत करना चाहिये। लेकिन वह घड़ी आ गयी है जब यह उन्नति सम्भव है।

*

ओरोवील कामनाओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि सच्ची चेतना की वृद्धि के लिए है।

*

भविष्य की ओर अभियान का अर्थ है, भविष्य हमें जो दे सकता है उसे पाने के लिए सभी भौतिक और नैतिक लाभों को छोड़ने के लिए तैयार रहना। ऐसे बहुत कम हैं; यद्यपि ऐसे बहुत-से हैं जो उसे पाना चाहेंगे जिसे 'भविष्य' ला रहा है, लेकिन वे नयी सम्पदा पाने के लिए उनके पास जो कुछ है उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

*

व्यक्ति आराम और कामनाओं की तुष्टि के लिए ओरोवील नहीं आता; वह आता है चेतना के विकास के लिए और जिस 'सत्य' को चरितार्थ करना है उसके प्रति एकनिष्ठ होने के लिए।

ओरोवील के सृजन में भाग लेने के लिए निःस्वार्थता पहली ज़रूरत है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २११-१२

ओरोवील की प्रगति

सुव्यवस्था, सामञ्जस्य, सौन्दर्य के लिए प्रयास करो

(ओरोवील के एक स्थपति का प्रश्न :) माँ, हमारे मन में यह प्रश्न उठा था कि हम जानना चाहते हैं कि क्या ओरोवील में आये कुछ लोगों के बारे में आप जानती थीं कि वे अपने साथ ओरोवील के लिए कठिनाई ला रहे हैं।

(प्रश्नकर्ता का इशारा उन कुछ लोगों की ओर था जो ओरोवील में आकर मदिरापान, स्वापक इत्यादि का सेवन करने लगे थे—सं.)

नहीं! निश्चित रूप से नहीं! नहीं, नहीं, मैं जान-बूझकर कठिनाइयाँ नहीं जोड़ती! मुझे पता है कि वे इसलिए आते हैं... उन्हें यहाँ आमन्त्रित नहीं करना चाहिये—इसके विपरीत, उन्हें यहाँ रहना ही नहीं चाहिये। चीज़ों को जितना सम्भव हो, सीधा-सरल बनाना चाहिये, हमें कठिनाई से विक्षुब्ध नहीं होना चाहिये, मुख्य बात यही है। मैं यह नहीं कह रही कि हमें कठिनाइयों को स्वीकार करना चाहिये—उन्हें बिलकुल, कतई, एकदम भी, आमन्त्रित नहीं करो; वैसे ही जीवन पर्याप्त रूप से कठिन है! लेकिन यह भी याद रखो कि जब कोई कठिनाई आये तो तुम्हें पूरे तन-मन से, साहस के साथ उसका सामना करना चाहिये।

हमें 'सुव्यवस्था', 'सामञ्जस्य', 'सौन्दर्य' तथा... सामूहिक अभीप्सा के लिए प्रयास करना चाहिये—उन सभी चीज़ों के लिए प्रयास जो अभी नहीं हैं। हमें... चूँकि व्यवस्थापक होने के नाते हमारा कार्य है, हम जैसा चाहते हैं कि दूसरे करें, उसके लिए हमें स्वयं उदाहरण बनना होगा। हमें व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठना और ऐकान्तिक रूप से भागवत 'इच्छा' के साथ समस्वर होना तथा भागवत 'इच्छा' का विनीत यन्त्र बनना होगा—हमें निर्वैयक्तिक होना होगा, किसी भी वैयक्तिक प्रतिक्रिया के बिना कार्य करना होगा।

हमें अपनी पूरी निष्कपटता में "बनना" होगा। 'प्रभु' जो चाहते हैं वही हो। बस इतना ही। अगर हम वह हो सकें, तब हम वह बन जायेंगे जो हमें बनना चाहिये, हमें बस इसी की चाह करनी चाहिये...

मैं जानती हूँ कि यह आसान नहीं है, लेकिन हम यहाँ आसान चीज़ें करने के लिए नहीं हैं। मैं चाहूँगी कि लोग यह अनुभव करें कि ओरोवील में आना किसी सरल जीवन में प्रवेश करना नहीं है—इसका अर्थ है, प्रगति के लिए भीमकाय प्रयास करने की हिम्मत रखना। और जो इसके साथ क़दम मिला कर नहीं चलना चाहते उन्हें यह स्थान छोड़ देना चाहिये। बात यही है। मैं चाहती हूँ कि यह चीज़ बहुत प्रबल हो—प्रगति करने की आवश्यकता, अपनी सत्ता को दिव्य बनाने की इतनी तीव्र अभीप्सा हो—कि जो इसमें संगति न बिठा पायें (जो असमर्थ हों या अनिच्छुक हों) वे स्वयं ही यहाँ से चले जायें : "ओह, मैं ऐसे जीवन की आशा नहीं कर रहा था।" तो, बात यही है—वे सभी जो आरामदेह जीवन जीना और अपनी मौजों के अनुसार—जो मरज़ी, जैसे मरज़ी—जीवन बिताना चाहते हैं और कहते हैं, "चलो, ओरोवील चलें!" यह जगह उनके लिए नहीं है। इसका ठीक उलटा होना चाहिये। लोगों को पता होना चाहिये कि ओरोवील आने का अर्थ है—प्रगति के लिए प्रायः एक अतिमानवीय प्रयास करना।

सचमुच हमारी मनोवृत्ति तथा हमारे प्रयास की सच्चाई से ही अन्तर पड़ता है। लोगों को यह अनुभव करना चाहिये कि यहाँ कपट और मिथ्यात्व के लिए कोई स्थान नहीं है—ये चीज़ें यहाँ नहीं चलेंगी। तुम उन लोगों को छल नहीं सकते जिन्होंने अपना सारा जीवन मानवता के परे जाने के लिए समर्पित कर दिया है।

बस, यही है युक्तियुक्त बात—**सच्चा बनना।**

तब हम डट कर खड़े रहेंगे और हमारे साथ खड़ी होगी समस्त भागवत शक्ति।

हम यहाँ अतिमानवता को तैयार करने आये हैं, कामनाओं तथा सुखद जीवन की तली में गिरने नहीं—कदापि नहीं।

४ अप्रैल १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

चेतना, प्रगति, आरोहण

यही कारण है कि एकदम से सामान्य सूत्र यह कहता है कि किसी भी तरह की आत्म-विस्मृति ओरोवील के जीवन के विरुद्ध है। व्यक्ति भूलने के लिए या अपने-आपको भूल जाने के लिए ओरोवील नहीं

जाता—वह किसी भी तरह की आत्म-विस्मृति क्यों न हो।

ओह, लेकिन अगर तुम नैतिक दृष्टिकोण से "आत्म-विस्मृति" शब्द का प्रयोग करो...! *(श्रीमाँ हँसती हैं)*

अपने सच्चे स्व को भूल जाना।

(श्रीमाँ हँसती हैं) जिस क्षण तुम इसे सूत्रबद्ध कर देते हो... यह कहना ज़्यादा सही होगा :

"अचेतना के किसी भी रूप के पीछे भागना ओरोवील के जीवन के विपरीत है।"

यह अधिक सर्वसामान्य है, और अगर हम इससे भी अधिक व्यापक होना चाहें, तो हम कह सकते हैं :

"पीछे या नीचे ले जाती हुई कोई भी गति ओरोवील के जीवन का खण्डन करती है, क्योंकि वहाँ का जीवन भविष्य की ओर उठान है।"

६ अप्रैल १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

दिव्य माँ, किस हद तक ओरोवील का निर्माण मनुष्य की आध्यात्मिकता को स्वीकार करने की वृत्ति पर निर्भर करता है?

आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन के बीच का विरोध, दोनों के बीच का भेद मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि वास्तव में, जीवन तथा आत्मा एक हैं और भौतिक कार्य करते हुए और उसी कार्य के द्वारा उच्चतम 'आत्मा' को अभिव्यक्त होना चाहिये।

२० अप्रैल १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अनुशासन और व्यवस्था

मुख्य चीज़ है कार्य-सम्पादन, और यह हम जिस आदर्श को चरितार्थ करना चाहते हैं उसके आँख से ओझल हुए बिना होना चाहिये।

*

क्या ओरोवील के निर्माण के लिए एक कार्य-पद्धति, व्यवस्था और सहयोग की ज़रूरत है?

अनुशासन जीवन के लिए ज़रूरी है। जीने के लिए, स्वयं शरीर अपने सभी कामों के लिए एक कड़े अनुशासन के अधीन है। इस अनुशासन में कोई भी ढील बीमारी पैदा करती है।

व्यवस्था कार्य का अनुशासन है, लेकिन ओरोवील के लिए हम मनमानी और कृत्रिम व्यवस्था के परे जाने की अभीप्सा करते हैं।

हम एक ऐसी व्यवस्था चाहते हैं जो भावी सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए कार्यरत उच्चतर चेतना की अभिव्यक्ति हो।

लेकिन जब तक यह सामुदायिक चेतना प्रकट न हो, और जब तक हम सच्चे और उचित ढंग से सम्मिलित कार्य न कर पायें, तब तक क्या करें?

सबसे अधिक प्रकाशमान केन्द्र के इर्द-गिर्द एक श्रेणीबद्ध संगठन, और सम्मिलित अनुशासन के आगे झुकना।

क्या हमें व्यवस्था के ऐसे तरीक़ों का उपयोग करना चाहिये जो सफल सिद्ध हुए हैं, पर हैं मानव-युक्ति और मशीन के उपयोग पर आधारित?

यह काम-चलाऊ व्यवस्था है और इसे बिलकुल अस्थायी रूप से स्वीकारना चाहिये।

क्या हमें व्यक्तिगत प्रारम्भों को खुल कर प्रकट होने देना और प्रेरणा और अन्तर्भास को व्यक्तिगत कार्य की परिचालिका शक्ति मानना चाहिये? क्या हमें उन सब बातों को रद्द कर देना चाहिये जिन्हें उनमें दिलचस्पी रखने वाले पसन्द न करें?

इस तरह काम करना हो तो ओरोवील के सभी कार्यकर्ताओं को 'भागवत सत्य' के बारे में सचेतन योगी होना चाहिये।

> *क्या समय आ गया है कि हम एक व्यापक संगठन की कामना करें, उसे खड़ा करने की कोशिश करें, या हमें उचित मनोभाव और मनुष्यों के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिये?*

काम करने के लिए एक संगठन की ज़रूरत है—लेकिन स्वयं वह संगठन नमनीय और प्रगतिशील होना चाहिये।

> *अगर प्रतीक्षा करना ही समाधान है फिर भी व्यवस्था के नियमों की व्याख्या करना और उच्छृंखल अव्यवस्था से बचना ज़रूरी नहीं है क्या?*

उन सबमें जो ओरोवील में रहना और काम करना चाहते हैं, पूर्ण सद्‌भावना, 'सत्य' को जानने और उसके आगे झुकने के लिए सतत अभीप्सा होनी चाहिये, उनमें काफ़ी नमनीयता होनी चाहिये जो काम में आने वाले संकटों का सामना कर सके और इस प्रकार की प्रगति करने के लिए अनन्त संकल्प हो जो परम 'सत्य' की ओर अपने-आप बढ़ता चला जाये।

और, अन्ततः सलाह का एक शब्द : औरों के दोषों की अपेक्षा अपने दोषों की अधिक चिन्ता करो। अगर हर एक गम्भीरता के साथ आत्म-परिपूर्णता के लिए काम करे, तो अपने-आप ही समग्र की पूर्णता आती जायेगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१३-१५

ओरोवील और धर्म

हम 'सत्य' चाहते हैं।

अधिकतर लोग, अपने-आप जो चाहते हैं उसी पर सत्य का *लेबल* लगा देते हैं।

ओरोवीलवासियों को 'सत्य' की चाह होनी चाहिये, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो।

ओरोवील उनके लिए है जो मूलतः दिव्य जीवन जीना चाहते हैं और

जो पुराने, नये, नूतन या भावी सभी धर्मों को त्याग देंगे।

'सत्य' का ज्ञान केवल अनुभूति में ही हो सकता है।

जब तक भगवान् की अनुभूति न हो जाये तब तक किसी को भगवान् के बारे में बोलना नहीं चाहिये।

भगवान् की अनुभूति प्राप्त करो, उसके बाद ही तुम्हें भगवान् के बारे में बोलने का अधिकार होगा।

धर्मों का वस्तुपरक, तटस्थ अध्ययन मानवजाति और मानव चेतना के विकास के अध्ययन का एक भाग होगा।

धर्म हैं, मानवजाति के इतिहास का एक भाग और ओरोवील में उनका अध्ययन इसी रूप में होगा—ऐसी मान्यताओं के रूप में नहीं जिन्हें व्यक्ति को मानना या न मानना चाहिये, बल्कि मानव चेतना के विकास की उस प्रक्रिया के अंग के रूप में जो मनुष्य को उसकी अगली उपलब्धि की ओर ले जाये।

हम संसार या विश्व की ऐसी किसी भी धारणा को धर्म का नाम दे देते हैं जिसे ऐकान्तिक 'सत्य' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें मनुष्य को पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये, साधारणतः इसलिए कि इस 'सत्य' को किसी अन्तःप्रकाश का परिणाम घोषित किया जाता है।

अधिकतर धर्म भगवान् के अस्तित्व को और उनकी आज्ञा-पालन के लिए नियमों को स्वीकार करते हैं, लेकिन कुछ सामाजिक-राजनीतिक संगठनों की तरह, नास्तिक धर्म भी हैं जो, किसी 'आदर्श' या 'प्रशासन' के नाम पर, अपनी आज्ञा मनवाने के उसी अधिकार का दावा करते हैं।

स्वाधीनता के साथ 'सत्य' की खोज करना और अपने निजी पथ द्वारा स्वतन्त्र रूप से 'सत्य' के निकट जाना मनुष्य का अधिकार है। लेकिन हर एक को यह जानना चाहिये कि उसकी खोज सिर्फ़ उसी के लिए अच्छी है और उसे दूसरों पर नहीं लादना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२२-२३

सबके सहमत होने के लिए हर एक को अपनी चेतना के शिखर तक उठना चाहिये; ऊँचाइयों पर ही सामञ्जस्य पैदा किया जाता है। श्रीमाँ

सच्चा ओरोवीलवासी बनने के लिए

१. पहली आवश्यकता है आन्तरिक शोध की ताकि मनुष्य यह जान सके कि सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, जातीय और आनुवंशिक आभासों के पीछे सचमुच वह है क्या।

केन्द्र में एक स्वतन्त्र, विशाल और सजग सत्ता है जो हमारी खोज की प्रतीक्षा कर रही है और जिसे हमारी सत्ता और ओरोवील में हमारे जीवन का सक्रिय केन्द्र बनना चाहिये।

२. व्यक्ति ओरोवील में नैतिक और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए रहता है; लेकिन यह मुक्ति अहं, उसकी कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की नयी दासता नहीं होनी चाहिये।

व्यक्ति की कामनाओं की पूर्ति आन्तरिक खोज के मार्ग को रोक देती है जिसे केवल शान्ति और पूर्ण अनासक्ति की पारदर्शकता में ही पाया जा सकता है।

३. ओरोवीलवासी को व्यक्तिगत स्वामित्व-भाव को बिलकुल भूल जाना चाहिये। क्योंकि हमारी भौतिक जगत् की यात्रा में, हमें जो स्थान लेना है उसके अनुसार, हमारे जीवन और हमारे कार्य के लिए जो कुछ अनिवार्य है वह हमारे लिए जुटा दिया जाता है।

हम अपनी आन्तरिक सत्ता के साथ जितने अधिक सचेतन रूप से सम्पर्क रखते हैं उतने ही अधिक ठीक-ठीक साधन हमें दे दिये जाते हैं।

४. काम, हाथ का काम भी, आन्तरिक शोध के लिए अनिवार्य वस्तु है। अगर व्यक्ति काम न करे, अगर अपनी चेतना को जड़-भौतिक में न डाले, तो जड़ कभी विकसित न होगा। चेतना को अपने शरीर द्वारा कुछ भौतिक तत्त्व को संगठित करने देना बहुत अच्छा है। अपने चारों तरफ़ व्यवस्था करना अपने अन्दर व्यवस्था लाने में सहायता देता है।

व्यक्ति को अपना जीवन बाहरी और कृत्रिम नियमों के अनुसार नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित आन्तरिक चेतना द्वारा संगठित करना चाहिये, क्योंकि अगर व्यक्ति जीवन को उच्चतर चेतना के संयम के अधीन न रख कर यूँ ही चलने दे, तो वह अस्थिर और अर्थशून्य हो जाता है। यह इस अर्थ में अपने समय का अपव्यय होगा कि जड़-भौतिक बिना किसी सचेतन उपयोग

के जैसा-का-तैसा ही बना रहेगा।

५. सारी पृथ्वी को नयी जाति के आविर्भाव के लिए तैयार होना होगा, और ओरोवील इस आविर्भाव को शीघ्र लाने के लिए सचेतन रूप से काम करना चाहता है।

६. थोड़ा-थोड़ा करके हमारे सामने यह व्यक्त किया जायेगा कि यह नयी जाति कैसी होगी, और तब तक के लिए सबसे अच्छा रास्ता यही है कि अपने-आपको पूरी तरह से भगवान् को अर्पण करते रहा जाये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२४-२५

भागवत स्वप्न

ओरोवील के लिए कहीं पर मैंने लिखा है...

"धरती को एक ऐसे स्थान की आवश्यकता है जहाँ मनुष्य सभी राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाओं, सभी सामाजिक परिपाटियों, एक-दूसरे का खण्डन करने वाली सभी नैतिकताओं और विरोधी धर्मों से परे सुख-शान्ति की छाँव में रह सके। एक ऐसा स्थान जहाँ भूतकाल की सभी दासताओं से मुक्त, मनुष्य उस 'भागवत चेतना' के अन्वेषण और उसे अपने जीवन में उतारने के लिए स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर देंगे जो 'चेतना' अभिव्यक्त होना चाहती है।

"ओरोवील वह स्थान होना चाहता है और खुली बाँहों से उन सबका स्वागत करना चाहता है जो आगामी कल के सत्य को जीना चाहते हैं।"

१७ सितम्बर १९६९ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

भगवान् के साथ ऐक्य से प्राप्त हुई स्वाधीनता ही सच्ची स्वाधीनता है।

अपने अहं पर प्रभुत्व पाने के बाद ही तुम भगवान् के साथ एक हो सकते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३२

ओरोवील-निर्माण के लिए पहल किसने की?

परम प्रभु ने।

ओरोवील की आर्थिक व्यवस्था में कौन भाग लेता है?

परम प्रभु।

अगर कोई ओरोवील में रहना चाहे, तो उसके लिए इसका क्या अर्थ है?

'परम पूर्णता' पाने के लिए कोशिश करना।

क्या ओरोवील में रहने के लिए व्यक्ति को योग का विद्यार्थी होना चाहिये?

सारा जीवन ही योग है। अतः तुम परम योग किये बिना जी ही नहीं सकते।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १३, पृ. २०२

ओरोवील का कार्य

सत्य का बीज

मुझे एक अन्तर्दर्शन हुआ, अधिक तो यह एक अन्तर्दर्शन का आदेश था।

बाह्य कारणों से मैं यह देख रही थी कि आज सभी देश अपने-आपको कितनी दयनीय अवस्था में पाते हैं, सचमुच पृथ्वी पर बहुत ही दुःखदायी और ख़तरनाक अवस्थाएँ मँडरा रही हैं, और मैंने देखा कि किस तरह राष्ट्रों ने कार्य किये हैं, और किस तरह वे अधिकाधिक 'मिथ्यात्व' में जी रहे हैं जो दिनानुदिन बढ़ता ही जा रहा है, और यह कि मनुष्यों ने अपनी सारी सृजनात्मक शक्ति विनाश के भयंकर साधनों का निर्माण करने में लगा दी है, और साथ ही, कहीं उनके अन्दर यह बचकाना विचार भी बैठा हुआ है कि अगर विनाश के इन साधनों का उपयोग किया गया तो ऐसी तबाही मच जायेगी कि यह सोच कर कोई भी राष्ट्र कभी उनका उपयोग करने की बात भी नहीं सोचेगा। लेकिन वे यह नहीं जानते कि चीज़ों में एक चेतना होती है और साथ ही होती है अभिव्यक्ति की शक्ति; और विनाश के वे सभी साधन उपयोग के लिए दबाव डाल रहे हैं; और यद्यपि मनुष्य उनका इस्तेमाल नहीं करना चाहेगा, फिर भी एक अधिक प्रबल शक्ति उनका प्रयोग करने के लिए मनुष्यों को धकेलती रहेगी।

फिर, यह सब देखते हुए, इस प्रलयरूपी विनाश की निकटता भाँपते हुए, मेरे अन्दर से एक पुकार, एक अभीप्सा उठी कि कोई ऐसी चीज़ धरती पर उतर आये जो मनुष्यों की इस भूल को पूरी तरह से पोंछ दे। और वह आयी, एक उत्तर आया... मैं यह नहीं कह सकती कि मैंने उसे अपने कानों से सुना, लेकिन वह इतना स्पष्ट था, इतना प्रबल और यथार्थ कि उस पर विवाद ही नहीं किया जा सकता। मैं शब्दों में इसका अनुवाद करने के लिए बाध्य हूँ; अगर मैं उसे शब्दों में उतारूँ तो मैं कुछ इस तरह कह सकती हूँ : "इसीलिए तुमने 'ओरोवील' की रचना की।"

तो यह था वह स्पष्ट अन्तर्दर्शन कि ओरोवील शक्ति और नूतन सृष्टि का केन्द्र है... (इसे मैं कैसे समझाऊँ?) जिसके अन्दर सत्य का बीज निहित है, और यह, कि अगर वह अंकुरित होकर विकसित हो जाये तो

ठीक उसके विकास की गति युद्ध-सामग्री को इकट्ठा करने की इस भूल के प्रलयंकारी परिणामों के विरोध में प्रतिक्रिया-स्वरूप होगी।

मुझे यह बहुत ही रुचिकर लगा, क्योंकि ओरोवील के जन्म का विचार पहले नहीं आया था; वह एक 'शक्ति' थी जो क्रियारत थी, मानों निरपेक्ष की अभिव्यक्ति हो रही हो, और वह इतनी प्रबल थी, इतनी सशक्त *(जब ओरोवील का विचार श्रीमाँ के पास आया)* कि मैं लोगों से कह सकती थी, "भले ही तुम इस पर विश्वास न करो, भले ही सभी परिस्थितियाँ इसके लिए पूरी तरह से अवाञ्छनीय प्रतीत हों, लेकिन **मैं जानती हूँ कि ओरोवील बन कर रहेगा**। हो सकता है कि सौ साल लगें, हो सकता है, हज़ार साल लगें, मुझे मालूम नहीं, लेकिन ओरोवील का निर्माण होकर रहेगा, क्योंकि इसका आदेश आ चुका है।" तो इसकी आज्ञप्ति मिल चुकी —बहुत सरलता से, एकदम, बिना किसी विचार और चिन्तन के, 'परम आदेश' की आज्ञानुसार यह हुआ। और जब मुझसे कहा गया कि (मैं कहती हूँ, "मुझसे कहा गया," लेकिन तुम समझ रहे हो न कि मेरा मतलब क्या है), जब मुझसे कहा गया, "ठीक यही कारण है कि तुमने ओरोवील का निर्माण किया; बस यही वजह है।..." क्योंकि आसन्न संकट के विरोध में क्रिया करने की यही **अन्तिम आशा** थी। अगर दूसरे देशों में इस सृष्टि के लिए रस पैदा हो जाये तो धीरे-धीरे करके ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जायेगी जो मनुष्यों द्वारा की गयी भूल को मिटाने में सक्षम होगी।...

२१ सितम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

एक अदृश्य क्रिया

स्वाभाविक रूप से, जब मुझे वह सब दिखलाया गया, मैं तुरन्त समझ गयी; मैंने देख लिया कि किस तरह ओरोवील की रचना से अदृश्य पर क्रिया होगी। वह क्रिया भौतिक या बाहरी नहीं होगी: वह अदृश्य में क्रिया होगी। और तब से मैं देशों को यह समझाने की कोशिश में लगी हूँ, निस्सन्देह, बाहरी रूप से नहीं, क्योंकि वे सभी यह सोचते हैं कि वे बहुत चतुर-चालाक हैं और उन्हें कोई कुछ भी नहीं सिखा सकता, लेकिन आन्तरिक रूप से, अदृश्य रूप से यह चल रहा है।...

यह सब तुम्हें बस यह बतलाने के लिए है कि अगर अन्य राष्ट्र

ओरोवील के कार्य में हाथ बँटायें—भले बहुत कम मात्रा में ही सही—इससे उनको बहुत लाभ पहुँचेगा, बहुत अधिक लाभ, इतना लाभ कि वह उनकी क्रियाओं के अनुपात में बहुत, बहुत ज़्यादा होगा।

२१ सितम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

ओरोवील की नियति

ओरोवील एक वैश्व नगरी बनना चाहता है जहाँ सभी देशों के नर-नारी शान्ति और बढ़ते हुए सामञ्जस्य में, सभी मतों, समस्त राजनीति और सब राष्ट्रीयताओं से ऊपर रह सकें।

ओरोवील का उद्देश्य है, मानव एकता को चरितार्थ करना।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १३, पृ. २०२

इस आदर्श स्थान में धन सर्वाधिपति नहीं होगा; भौतिक सम्पत्ति तथा सामाजिक पद की अपेक्षा व्यक्तित्व का अधिक मूल्य होगा। यहाँ पर कार्य आजीविका के लिए नहीं, बल्कि अपने-आपको अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए होगा, साथ ही यह कार्य पूरे समुदाय की सेवा के लिए भी होगा। दूसरी ओर, समुदाय हर एक के निर्वाह तथा कार्यक्षेत्र का प्रबन्ध करेगा। संक्षेप में, यह एक ऐसा स्थान होगा जहाँ मानव सम्बन्ध, जो प्रायः ऐकान्तिक रूप से प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित होते हैं, अधिक अच्छा करने की स्पर्धा तथा सहयोग में और सच्चे भ्रातृ-भाव में बदल जायेंगे।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. १०२-०३

तुम कहते हो कि ओरोवील एक स्वप्न है। हाँ, यह प्रभु का "स्वप्न" है और प्रायः ये "स्वप्न" **सत्य** निकलते हैं—तथाकथित मानव वास्तविकताओं की अपेक्षा बहुत अधिक वास्तविक!

*

पार्थिव सृष्टि में मानवजाति ही अन्तिम सीढ़ी नहीं है। विकास जारी है और मनुष्य का अतिक्रमण होगा। यह तो हर व्यक्ति को जानना है कि वह इस नयी जाति के आगमन में भाग लेना चाहता है या नहीं।

जो वर्तमान जगत् से सन्तुष्ट हैं उनके लिए ओरोवील के होने का कोई मतलब नहीं।

*

हम ओरोवील को 'अतिमानव' का पालना बनाना चाहेंगे।

*

सभी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विश्वासों से ऊपर उठ कर ओरोवील को 'सत्य' की सेवा में होना चाहिये।

ओरोवील सच्चाई और 'सत्य' के साथ शान्ति की ओर प्रयास है।

*

ओरोवील वैश्व शान्ति, मैत्री, भ्रातृभाव और एकता के लिए प्रयास है।

*

ओरोवील : अन्ततः एक ऐसा स्थान जहाँ मनुष्य केवल भविष्य के बारे में सोच सकेगा।

*

ओरोवील उन सब लोगों के लिए एक आश्रय है जो 'ज्ञान', 'शान्ति' और 'एकता' के भविष्य की ओर तेज़ी से जाना चाहते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०५-०६

ओरोवील श्रीअरविन्द की शिक्षा पर आधारित मानव एकता की पहली उपलब्धि होना चाहता है जहाँ सभी देशों के लोग अपनापन अनुभव करेंगे।

जनवरी १९७२

*

जब तक हम झूठ बोलते रहेंगे, तब तक हम सुखद 'भविष्य' को अपने से बहुत दूर धकेलते रहेंगे।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३२-३३

सच्चा ओरोवीलवासी बनने के लिए व्यक्ति को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये।

श्रीमाँ

ओरोवील के लिए सन्देश

ओरोवीलवासियों से

ओरोवील में वह सामञ्जस्यपूर्ण वातावरण स्थापित करने के लिए जिसका, परिभाषा के अनुसार, वहाँ राज होना चाहिये, पहला क़दम यह है कि हर व्यक्ति रगड़ और ग़लतफ़हमी का कारण ढूँढ़ने के लिए अपने अन्दर देखे।

क्योंकि ये कारण **हमेशा** दोनों ओर होते हैं, और औरों से किसी भी चीज़ की माँग करने से पूर्व, हर एक को पहले यह प्रयास करना चाहिये कि वह अपने अन्दर से उन्हें निकाल बाहर करे।

*

हर अच्छे ओरोवीलवासी को अपने-आपको समस्त कामनाओं, अभिरुचियों और घृणाओं से मुक्त करने का प्रयास करना चाहिये।

ओरोवील में रहने के लिए सभी परिस्थितियों में समता प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य है।

*

लड़ाई-झगड़े ओरोवील की आत्मा के एकदम विपरीत हैं।

*

ओरोवीलवासी होने के लिए व्यक्ति को कम-से-कम मानवता के प्रबुद्ध भाग का सदस्य होना चाहिये और उच्चतर चेतना की अभीप्सा करनी चाहिये जो भावी जाति का सञ्चालन करेगी।

हमेशा अधिक ऊँचा और हमेशा अधिक अच्छा,—अहं की सीमाओं के परे।

*

व्यक्ति ओरोवील में आराम के लिए नहीं बल्कि चेतना में वृद्धि और भगवान् की सेवा के लिए रहता है।

*

क्या तुम ओरोवील में अपनी छोटी-मोटी निजी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने आये हो?

यह सचमुच आवश्यक नहीं था। इसके लिए तो बाक़ी सारी दुनिया

पड़ी है।

व्यक्ति ओरोवील में भागवत जीवन चरितार्थ करने के लिए आता है जो पृथ्वी पर अभिव्यक्त होना चाहता है।

हर एक को इस दिशा में प्रयास करना चाहिये और तथाकथित "आवश्यकताओं" के सम्मोहन में न रहना चाहिये जो व्यक्तिगत सनकों के सिवाय और कुछ नहीं होतीं।

ऊपर और सामने देखो, पाशविक मानवीय प्रकृति से ऊपर उठने की कोशिश करो। दृढ़ निश्चय करो और तुम देखोगे कि पथ पर चलने में तुम्हारी सहायता की जा रही है।

*

ओरोवील के लिए काम करना अधिक सामञ्जस्यपूर्ण 'भविष्य' के आगमन को जल्दी लाना है।

*

अगर उचित मनोभाव हो तो हम अपनी छोटी-से-छोटी क्रिया में भी भगवान् की सेवा कर सकते हैं।

*

भगवान् के प्रति समर्पण-भाव से किये गये काम में ही चेतना का सर्वोत्तम विकास होता है।

आलस्य और निष्क्रियता का परिणाम है तमस् जो निश्चेतना में गिरना है और प्रगति तथा प्रकाश के एकदम विपरीत है।

अपने अहं पर विजय पाना और केवल भगवान् की सेवा में जीना सच्ची 'चेतना' पाने का आदर्श और सबसे छोटा रास्ता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१७, २१८, २२७-२९

अपनी चेतना को धरती के आयाम तक विस्तृत करो और तुम्हें हर वस्तु के लिए स्थान मिल जायेगा।

*

ओरोवीलवासियों का आदर्श होना चाहिये अहंकार-शून्य होना—अपने अहंकार को संतुष्ट करना हर्गिज़ नहीं।

अगर वे स्वार्थ-भरे अधिकार के पुराने मानवीय ढर्रे का अनुसरण करें,

तो वे दुनिया को बदलने की आशा कैसे कर सकते हैं?

*

अपनी राय का समर्थन करने के लिए हर एक के पास अच्छे कारण होते हैं, और उनके बीच निर्णय करने में मैं पटु नहीं हूँ।

लेकिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मैं जानती हूँ कि सच्ची सद्भावना के साथ सभी रायों का अधिक विस्तृत और सच्चे समाधान में सामञ्जस्य किया जा सकता है। *ओरोवील* में काम करने वालों से मैं इसकी आशा रखती हूँ। ऐसा नहीं कि कुछ लोग औरों के आगे दब जायें, बल्कि इसके विपरीत, अधिक विस्तृत और पूर्ण परिणाम पाने के लिए सभी को सम्मिलित प्रयास करना चाहिये।

ओरोवील का आदर्श इस प्रगति की माँग करता है—क्या तुम इसे नहीं करना चाहते? आशीर्वाद।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३१-३२

सहस्राब्दियों से हम बाहरी साधन, बाहरी यन्त्र, जीने की बाहरी तकनीकें विकसित कर रहे है—और अन्ततः वे साधन और वे तकनीकें हमें कुचल रही हैं। नयी मानवता का चिह्न हमारे इस वर्तमान दृष्टिकोण से एकदम उलटा है, और वह यह समझना है कि आन्तरिक ज्ञान तथा आन्तरिक तकनीक जगत् को कुचले बिना उसे परिवर्तित कर सकती और उसका स्वामी बन सकती है।

"ओरोवील वह स्थान है जहाँ जीने के इस तरीक़े को कार्यान्वित किया जा रहा है, यह त्वरित क्रमविकास का वह केन्द्र है जहाँ मनुष्य को आन्तरिक भावना के द्वारा जगत् को बदलना शुरू कर देना चाहिये।"

३ अगस्त १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

हम यहाँ सभी कामनाओं को त्यागने के लिए, भगवान् की ओर मुड़ने के लिए और भगवान् के बारे में सचेतन होने के लिए हैं। हम जिन भगवान् को खोजते हैं वे सुदूर और अगम्य नहीं हैं। वे अपनी सृष्टि के हृदय में हैं और चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें, और अपने निजी रूपान्तर द्वारा उन्हें जानने के योग्य बनें, उनके साथ एक होने और अन्त में, सचेतन रूप से

उन्हें अभिव्यक्त करने-योग्य बनें। हमें अपने-आपको इसके लिए अर्पित करना चाहिये, हमारे जीवन का यही सच्चा प्रयोजन है। और इस उच्चतर उपलब्धि के लिए हमारा पहला क़दम है, अतिमानसिक 'चेतना' की अभिव्यक्ति।

भगवान् को पाना और अपने जीवन में अभिव्यक्त करना ही इसका उपाय है, जानवर बनना और कुत्ते-बिल्ली का जीवन बिताना नहीं।

इसके बिलकुल विपरीत! ओरोवील की जनसंख्या के अधिकतर लोग अतिमानव नहीं, अवमानव हैं। हाँ तो, अब समय आ गया है जब इस सबको ख़तम होना चाहिये।

ऐसे लोग हैं जो बस यूँ ही आ गये हैं, और अब जब मैं कहती हूँ: "यह नहीं चलेगा", तो वे उत्तर देते हैं: "ओह, हम उसके लिए नहीं आये थे"!

ओह, मैं कितना चाहती हूँ कि जाकर उन सबके मुँह पर कह सकूँ कि वे ग़लती पर हैं, कि चीज़ें इस तरह नहीं हैं, लेकिन मेरा ख़याल है कि इसे लिखने का समय आ गया है।

कितनी सुन्दर है यह, कितनी सुन्दर है मानवजाति!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३७७-७८

धरती को आवश्यकता है एक ऐसे स्थान की जहाँ मनुष्य समस्त राष्ट्रीय स्पर्धाओं से, सामाजिक प्रथाओं से, आत्म-विरोधी नैतिकताओं से और संघर्षरत धर्मों से दूर रह सके;

एक ऐसे स्थान की जहाँ मनुष्य अतीत की सारी दासता से मुक्त होकर, अपने-आपको उस 'दिव्य चेतना' की खोज में पूरी तरह लगा सके जो वहाँ अभिव्यक्त होने की कोशिश कर रही है।

ओरोवील ऐसा ही स्थान होना चाहता है और अपने-आपको उन लोगों को अर्पण करना चाहता है जो आगामी कल के 'सत्य' को जीने की अभीप्सा करते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१८

ओरोवील में बहुत-से लोग कहते हैं कि ओरोवील में नियोजित कार्य अभीष्ट नहीं हैं; वे सहज-स्फुरित कार्य के पक्ष में हैं।

सहज-स्फुरित कार्य केवल कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति ही कर सकता है।

क्या कोई प्रतिभाशाली होने का दावा करता है?...

आशीर्वाद।

*

निम्न प्रकृति के सभी आवेगों का अनुसरण करना निश्चय ही अतिमानसिक तरीक़ा नहीं है और उसका यहाँ कोई स्थान नहीं है।

हम जो चाहते हैं वह है—अतिमानस के आगमन की गति को तेज़ करना, आवेगों और कामनाओं से भरी मानवता की कुरूप अवस्था में पतन बिलकुल नहीं।

*

ओरोवील उन व्यक्तियों को आश्रय देना चाहता है जो ओरोवील में रह कर ख़ुश होते हैं। जो इससे असन्तुष्ट हैं उन्हें दुनिया में वापस चले जाना चाहिये जहाँ वे जो चाहें कर सकते हैं और जहाँ हर एक के लिए जगह है।

*

ओरोवील का सच्चा भाव है **सहयोग** और यह अधिकाधिक होना चाहिये। सच्चा सहयोग देवत्व तक जाने का रास्ता तैयार करता है।

‘**श्रीमातृवाणी**’, खण्ड १३, पृ. २३३-३४

ओरोवील का निर्माण एक प्रगतिशील अतिमानवजाति के लिए हुआ है, अधःमानवजाति के लिए नहीं जिसका सञ्चालन उसकी सहज वृत्तियाँ करती हैं और जिस पर उसकी कामनाओं का आधिपत्य रहता है। जो अधःमानवजाति, पाशविक मानवजाति के अंग हैं, उनके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।

ओरोवील उन लोगों के लिए है जो अतिमानस की अभीप्सा करते हैं और उस तक पहुँचने का प्रयास करते हैं।

‘**श्रीमातृवाणी**’, खण्ड १३, पृ. २३५

हर एक को प्रगति करनी है और अधिक सच्चा तथा निष्कपट बनना है।

ओरोवील का निर्माण अहंकारों और उनके लालचों की सन्तुष्टि के लिए नहीं, बल्कि एक नये जगत्, अतिमानसिक जगत् के लिए हुआ है जो

भागवत पूर्णता को अभिव्यक्त करता है।

*

ओरोवील का निर्माण अतिमानवजाति के लिए हुआ है, उनके लिए जो अपने अहं पर विजय पाना और सभी कामनाओं को त्यागना चाहते हैं, जो अतिमानस को प्राप्त करने के लिए अपने-आपको तैयार करना चाहते हैं। केवल वे ही सच्चे ओरोवीलवासी हैं।

जो लोग अपने अहं की आज्ञा का पालन करना चाहते हैं और अपनी सभी कामनाओं को सन्तुष्ट करना चाहते हैं वे अवमानवजाति के सदस्य हैं और उनके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। उन्हें जगत् में वापस चले जाना चाहिये जो उनका सच्चा स्थान है।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १३, पृ. २३६

ओरोवील के लिए आप कैसी राजनीतिक व्यवस्था चाहती हैं?

एक मज़ेदार परिभाषा मेरे दिमाग़ में है : भागवत अराजकता। लेकिन जगत् इसे नहीं समझेगा। मनुष्यों को अपने चैत्य के प्रति सचेतन होना चाहिये और सहज रूप से, निश्चित नियमों और विधानों के बिना, अपने-आपको व्यवस्थित करना चाहिये—यह आदर्श है।

इसके लिए, व्यक्ति को अपनी चैत्य चेतना के सम्पर्क में होना चाहिये, व्यक्ति को उसके पथ-प्रदर्शन में रहना चाहिये और अहंकार के अधिकार और प्रभाव को अदृश्य हो जाना चाहिये।

*

जब तक उनमें कामनाएँ हैं, वे सच्चे ओरोवीलवासी नहीं हैं।

उन्हें शब्दों से खेलना न चाहिये : कामनाओं और अभीप्सा में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। हर सच्चा व्यक्ति यह जानता है। और सबसे पहली चीज़ यह है कि उन्हें *अपने अहं और अपनी कामनाओं* को भगवान् मान लेने की भूल नहीं करनी चाहिये। चूँकि वे अपने-आपको धोखा देते हैं इसलिए यह घपला होता है।

उन्हें अपने अन्दर भागवत उपस्थिति के प्रति सचेतन होना चाहिये, और उसके लिए, अहं को चुप करवाना होगा और कामनाओं को अदृश्य

होना होगा।

*

ओरोवील श्रीअरविन्द के आदर्श को चरितार्थ करने के लिए बनाया गया है, जिन्होंने हमें कर्मयोग सिखलाया है। ओरोवील उन लोगों के लिए है जो कर्मयोग करना चाहते हैं।

ओरोवील में रहने का अर्थ है कर्मयोग करना। इसलिए सभी ओरोवीलवासियों को कोई-न-कोई काम लेना चाहिये और उसे योग के रूप में करना चाहिये।

‘**श्रीमातृवाणी**’, खण्ड १३, पृ. २३७-३८, २३९

(कुछ व्यक्तियों और दलों के बारे में जो ओरोवील के विकास में सहायता करना चाहते हैं)

वे ख़ुद चाहे अभ्यास न करते हों, लेकिन अगर वे योग के बारे में जानते भी नहीं तो वे ओरोवील के उद्देश्य को भला कैसे समझ पायेंगे?

‘**श्रीमातृवाणी**’, खण्ड १३, पृ. २६८

यूनेस्को के लिए सन्देश

ओरोवील पृथ्वी पर अतिमानसिक ‘सद्वस्तु’ के आगमन की गति को तेज़ करने के लिए है।

उन सब लोगों के सहयोग का स्वागत है जिन्हें लगता है कि जगत् जैसा होना चाहिये वैसा नहीं है।

हर एक को जानना चाहिये कि वह मृत्यु के लिए तैयार पुराने जगत् के साथ मेल-जोल रखना चाहता है, या नये और अधिक अच्छे जगत् के साथ जो जन्म लेने की तैयारी कर रहा है।

‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १३, पृ. २३२-३३

ओरोवील की आत्मा

मातृमन्दिर

हम मातृमन्दिर बनाना चाहते हैं; तो विचार यही था कि जब हम मातृमन्दिर बनाना शुरू करें, तो जो भी वहाँ काम करना चाहे कर सके। और वह सचमुच केन्द्रीय विचार पर काम करना होगा।

और यह जल्दी ही होना चाहिये। यह अभी तक शुरू हो जाना चाहिये था। तो वहाँ, वहाँ हर एक के लिए काम होगा। हम बहुत समय से मातृमन्दिर शुरू करने की सोच रहे हैं। वस्तुतः, जो अन्य स्थानों पर काम कर रहे हैं उनके सिवा, सभी को, आकर यहाँ काम करना चाहिये। वहाँ हर एक के लिए काम होगा। यह ज़्यादा अच्छा होगा...। यह नगर का केन्द्र है।

तुम उससे यह कह सकते हो: सिद्धान्त रूप में विचार अच्छा है। लेकिन व्यावहारिक रूप में, हम बहुत समय से, साल-भर से अधिक से मातृमन्दिर शुरू करना चाह रहे हैं ताकि हर एक वहाँ हर काम कर सके। व्यक्ति को आकर कहना होगा: "नहीं, मैं नहीं करना चाहता" और उसके कारण होंगे।

यह 'शक्ति' की तरह है, ओरोवील की केन्द्रीय 'शक्ति', ओरोवील को सम्बद्ध करने वाली 'शक्ति'।

वहाँ बग़ीचे होंगे। वहाँ सब कुछ होगा, सभी सम्भावनाएँ: इंजीनियर, वास्तुकार, सभी तरह के शारीरिक काम। तो तुम उससे कह सकते हो कि यह विचार हवा में था और उसने पकड़ लिया है, लेकिन हम चाहते हैं कि उसका उपयोग सच्चे प्रतीकात्मक रूप में हो। और जब हम मातृमन्दिर बनाना शुरू करेंगे, तो हम वहाँ पर हर एक को काम में लगा देंगे। हर रोज़, सारे समय नहीं, लेकिन उसे व्यवस्थित किया जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३७२

पुरातन तथा नूतन तरीक़ा

जो लोग ओरोवील में रहते हैं और अपनी पुरानी आदतों के अनुसार चलने का आग्रह करते हैं—पुरानी और नयी भी—जो चेतना को नुक़सान पहुँचाती हैं, जो चेतना को नीचा करती हैं, जैसे धूम्रपान, मदिरापान, और

स्वभावतः, नशीली औषधियाँ... यह सब, ऐसा है मानों तुम अपनी सत्ता के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हो। आश्रम में, स्वभावतः, मैंने कह दिया 'नहीं'। हम चेतना में विकसित होना चाहते हैं, हम कामनाओं के गढ़े में उतरना नहीं चाहते। जो समझने से इनकार करते हैं उनसे मैं कहती हूँ : ओरोवील का लक्ष्य है एक नये, अधिक गभीर, अधिक जटिल, अधिक पूर्ण जीवन की खोज करना और दुनिया को यह दिखाना कि आगामी कल आज से ज़्यादा अच्छा होगा।

कुछ लोग मानते हैं कि धूम्रपान, मदिरापान आदि, आगामी कल के जीवन के भाग होंगे। यह उनका अपना मामला है। अगर वे इस अनुभव में से गुज़रना चाहते हैं, तो उन्हें करने दो। वे देखेंगे कि वे अपने-आपको अपनी ही कामनाओं के बन्दी बना रहे हैं। बहरहाल, मैं नैतिकतावादी नहीं हूँ, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं। यह उनका अपना मामला है। अगर वे इस अनुभव में से गुज़रना चाहते हैं, तो भले कर लें। लेकिन आश्रम इसका स्थान नहीं है। भगवान् की कृपा से आश्रम में हमने सीख लिया है कि जीवन कुछ और चीज़ है। सच्चा जीवन कामनाओं की तृप्ति नहीं है। मैं अनुभव से यह प्रमाणित कर सकती हूँ कि स्वापक औषधियों के द्वारा लायी गयी सभी अनुभूतियाँ, अदृश्य जगत् के साथ यह सारा सम्पर्क, स्वापक औषधियों के बिना ज़्यादा अच्छी तरह, ज़्यादा सचेतन और संयत ढंग से मिल सकता है। सिर्फ़ व्यक्ति को अपने ऊपर संयम रखना होगा। यह ज़हर निगलने से ज़्यादा कठिन है। लेकिन मैं उपदेश देने नहीं बैठूँगी। जब ओरोवील उच्चतर जीवन का उदाहरण बन जायेगा, जब वह सभी कामनाओं पर विजय पा चुकेगा और अपने-आपको उच्चतर शक्तियों की ओर खोल देगा, तब हम हर जगह जा सकेंगे। जब ओरोवीलवासी जगत् में घूमती-फिरती ज्योतियाँ बन जायेंगे, तो उनका स्वागत होगा। तो, यह बात है!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३७५-७६

भविष्य के वासी *(सच्चे ओरोवीलवासी के लिए कुछ संकेत)*

तो हमें यह कहना चाहिये : "पहली शर्त है, आन्तरिक खोज..."

आदर्श क्रम में, पहली शर्त है, वर्तमान जगत् और मनुष्य की वर्तमान

> *अवस्थाओं से हट कर किसी दूसरी चीज़ की आवश्यकता का होना।*

निस्सन्देह, यह तो जानी-मानी बात है।

> *फिर, वहाँ तक पहुँचने के लिए, पहली शर्त है कि व्यक्ति को यह जानने के लिए अपने अन्दर बहुत गहराई में उतरना चाहिये कि इन सभी आनुवंशिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आभासों के पीछे वास्तव में वह क्या है—वह सचमुच क्या है। फिर उस स्तर पर, चीज़ें सार्थक बनने लगती हैं, उसके पहले वे निस्सार होती हैं। उसके पहले वस्तुतः वे नैतिकता, धर्म और दर्शन से लिपटी रहती हैं—वे अर्थहीन होती हैं।*

तो हम लिखेंगे *(माँ लिखती हैं)* : पहली अनिवार्य शर्त...

> *शर्त से अधिक यह अनिवार्यता है।*

१. पहली अनिवार्यता है—आन्तरिक खोज ताकि व्यक्ति यह पता लगा ले कि सभी सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, जातीय, आनुवंशिक रूपों के पीछे व्यक्ति का सच्चा स्वरूप क्या है।

तब हमें उनसे कहना चाहिये कि एक खोज करनी **है**, क्योंकि कई इसके बारे में जानते ही नहीं हैं! *(माँ हँसती हैं)*

केन्द्र में एक मुक्त सत्ता है, विशाल तथा जानकार, जो इस प्रतीक्षा में है कि कब हम उसे खोज निकालेंगे और उसे ही हमारी सत्ता और ओरोवील के हमारे जीवन में कार्यकारी केन्द्र बनना चाहिये।...

हमें उनको निजी सम्पत्ति के भाव से मुक्त होना सिखाना चाहिये।... समझ रहे हो, सब कुछ भगवान् का है, उन्हीं की सम्पत्ति है, और भगवान् न केवल तुम्हें एक केन्द्र प्रदान करते हैं (तुम्हारे व्यक्तित्व का केन्द्र), बल्कि विभिन्न वस्तुओं की सम्भावना भी देते हैं जिनका तुम व्यक्तिगत रूप में उपयोग कर सकते हो; तुम्हें उन सभी को इस भावना के साथ लेना चाहिये कि वे तुम्हें भगवान् के द्वारा **उधार** के रूप में दी गयी हैं। निस्सन्देह भगवान् शाश्वत हैं, वे ऐसे हैं जो हमेशा बने रहेंगे, लेकिन साथ ही, चूँकि वे सभी व्यक्तिगत केन्द्रों का भी निर्माण करते हैं, यानी, व्यक्तियों की भी

रचना करते हैं, इसलिए उनके कार्य को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, तो उन सभी चीज़ों को वे **किराये** पर देते हैं। यही एकदम सटीक बात है : उनके द्वारा प्रदान की गयी चीज़ें नियत समय तक तुम्हारे अधिकार में रहती हैं, चिरकाल तक नहीं।

व्यक्तिगत सम्पत्ति के भाव को जड़ से उखाड़ने का यही तरीक़ा है।

यह रुचिकर होगा : "आगामी कल की नगरी के वासी की व्याख्या होगी यह।"

> *यहाँ दूसरे अनुच्छेद में कामनाओं के बारे में कहा गया है, और तीसरे में ज़रूर व्यक्तिगत सम्पत्ति की चर्चा होगी।*

कामनाओं का एकमात्र सच्चा इलाज है, अपने-आपको प्रभु के हाथों में सौंप देना और 'वे' जो-जो दें उन्हें ही एकमात्र उन चीज़ों के रूप में लेना जिनकी तुम्हें आवश्यकता है। और यह अपने-आपमें बहुत प्रगतिशील स्थिति है।

> *शुरू में आपने कहा था, "नैतिक परिपाटियों इत्यादि से छुटकारा पाने के लिए लोग ओरोवील में रहने आये हैं, लेकिन इसका अर्थ स्वेच्छाचारी स्वच्छन्दता को खुली छूट देना हर्गिज़ नहीं है।..."*

हाँ, एकदम सही है *(श्रीमाँ लिखती हैं)* :

२. व्यक्ति नैतिक तथा सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए ओरोवील में रहता है; लेकिन ऐसा न हो कि यह स्वाधीनता अहंकार, उसकी कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की नयी दासता को अपना ले।

> *... यही आधार है। फिर तीसरे अनुच्छेद में आपने कहा, "ओरोवीलवासी को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति के विचार से स्वयं को मुक्त कर देना चाहिये।"*

लेकिन यह केवल "विचार" नहीं है, यही इसका सच्चा "अर्थ" है!

(माँ दोबारा लिखती हैं)

३. ओरोवीलवासी को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति के भाव से स्वयं को मुक्त कर देना चाहिये।

३ जून १९७० *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

क्या मैंने तुम्हें उस महिला के बारे में बतलाया था जो शायद स्वीडन या फिर नॉरवेजिया की थी, वह मुझे एक बड़ा-सा सलीब भेजना चाहती थी!... हाँ, हाँ, मैंने यह बात तुम्हें बतलायी थी लेकिन वे दो चित्र नहीं दिखलाये थे। हाँ, मैंने ओरोवील के लिए आकाशगंगा का एक चित्र चुना, और उसके साथ ओरोवील का एक चित्र, दोनों चित्रों में कुछ समानता थी, और अब वह सलीब भेजना चाह रही है, तो क्या उस सलीब के नीचे बड़े-बड़े शब्दों में लिख दें *(श्रीमाँ पढ़ती हैं)* :

"मानव की कामनाओं ने 'भागवत चेतना' को सलीब पर चढ़ा दिया।"

२३ अप्रैल १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

(मातृमन्दिर की नींव रखने के समय दिया गया सन्देश, २१ फ़रवरी १९७१)

"मातृमन्दिर भगवान् के प्रति ओरोवील की अभीप्सा का जीवन्त प्रतीक हो।"

(मातृमन्दिर का काम शुरू होने पर दिया गया सन्देश)

सहयोग का भ्रातृसंघ। आनन्द और 'प्रकाश' में 'एकता' के प्रति अभीप्सा।

(चार स्तम्भों के अर्थ)

उत्तर—महाकाली
पूरब—महालक्ष्मी
दक्षिण—महेश्वरी
पश्चिम—महासरस्वती

(भूमिगत बारह कक्षों के नाम जो मातृमन्दिर की नींव में बनेंगे, जुलाई १९७२)

'सच्चाई', 'नम्रता', 'कृतज्ञता', 'अध्यवसाय', 'अभीप्सा', 'ग्रहणशीलता', 'प्रगति', 'साहस', 'भद्रता', 'उदारता', 'समता', 'शान्ति'।

(मातृमन्दिर के चारों ओर के बारह बग़ीचों के नाम)

'सत्', 'चित्', 'आनन्द', 'प्रकाश', 'जीवन', 'शक्ति', 'वैभव', 'उपयोगिता', 'प्रगति', 'यौवन', 'सामञ्जस्य', 'पूर्णता'।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २४१-४२, २४४

एक स्वप्न

संसार में कहीं एक ऐसा स्थान होना चहिये जिसे कोई देश या राष्ट्र अपनी सम्पत्ति न कह सके, ऐसा स्थान जहाँ सद्‌भावना और सच्ची अभीप्सा वाले सब लोग पूरी स्वतन्त्रता से विश्व नागरिक बन कर एकमात्र सत्ता की, परम सत्य की आज्ञा का पालन करते हुए रह सकें; वह शान्ति, एकता और सामञ्जस्य का स्थान होगा जहाँ मनुष्य की सारी युद्ध-वृत्तियों का उपयोग केवल दुःख और दर्द के कारणों को जीतने में, अपनी कमज़ोरियों और अज्ञान पर प्रभुत्व प्राप्त करने में, तथा अपनी सीमाओं और अशक्यताओं पर विजय प्राप्त करने में होगा; ऐसा स्थान जहाँ मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोद की अपेक्षा आत्मा की आवश्यकताओं और प्रगति को अधिक महत्त्व दिया जायेगा। इस स्थान पर, बच्चे अपनी आत्मा के साथ सम्बन्ध खोये बिना समग्र रूप से बढ़ और विकसित हो सकेंगे; शिक्षा भी यहाँ परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने, प्रमाण-पत्र प्राप्त करने अथवा ऊँचे पद पाने के लिए नहीं दी जायेगी, वह विभिन्न क्षमताओं को बढ़ाने और नयी क्षमताओं को प्रकट करने में सहायता देगी। इस स्थान पर सेवा करने और संगठित करने के अवसर उपाधियों और पदों का स्थान ले लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा किया जायेगा। पूरे संगठन में बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवन के सुखों व शक्तियों की वृद्धि में नहीं, बल्कि कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों की वृद्धि में अभिव्यक्ति पायेगी। सभी लोगों को सभी प्रकार का कलात्मक सौन्दर्य, चित्रकला, शिल्प, संगीत, साहित्य आदि समान रूप से प्राप्य होगा। इस कलात्मक सौन्दर्य का आनन्द प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों के बल पर नहीं, बल्कि अपनी आन्तरिक क्षमताओं के अनुपात में ही प्राप्त कर सकेगा।...

निश्चित रूप से पृथ्वी अभी ऐसे आदर्श को चरितार्थ करने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि अभी तक मानव के पास इसे समझने और स्वीकार करने के लिए आवश्यक ज्ञान नहीं है, न इसे कार्यान्वित करने के लिए अनिवार्य सचेतन शक्ति ही है; इसीलिए मैं इसे स्वप्न कहती हूँ।...

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १०२-०३

दैनन्दिनी

फ़रवरी

१. छोटे-छोटे बच्चों में सौन्दर्य की अभीप्सा होनी चाहिये, इसलिए नहीं कि दूसरे उससे प्रसन्न होंगे या उससे उनका नाम होगा, बल्कि स्वयं सौन्दर्य के प्रेम के लिए सौन्दर्य की चाह होनी चाहिये।

२. हम सदा बदलते हुए ऊपरी दृश्यों को ही न देखा करें। हर चीज़ में और हर जगह केवल भगवान् की अपरिवर्तनशील एकता का ही मनन करें।

३. हर एक के अन्दर अपना अहंकार होता है और सभी अहंकार एक-दूसरे से टकराते रहते हैं। आदमी स्वतन्त्र सत्ता तभी बन सकता है जब वह अहंकार से पीछा छुड़ा ले।

४. हम चाहे जो करें, हमें सदा अपने लक्ष्य को याद रखना चाहिये।

५. अभीप्सा हृदय से आनी चाहिये।

६. मनुष्य का जीवन अपूर्ण है, जब तक उसने भगवान् को न पा लिया हो।

७. एक ऐसी चेतना है जिसे कोई चीज़ भ्रष्ट, भद्दा या दूषित नहीं कर सकती। यही वह चीज़ है जिसे हम 'भागवत चेतना' कहते हैं।

८. भगवान् वास्तव में वही हैं जो तुम अपनी गभीरतम अभीप्सा में 'उनसे' आशा करते हो।

९. भय के द्वारा शिक्षा देना बड़ा ख़तरनाक तरीक़ा है, यह सदा ही छल-कपट और असत्य को उत्पन्न करता है।

१०. सच्चाई, ईमानदारी, स्पष्टवादिता, साहस, निष्काम-भाव, निःस्वार्थता, धैर्य, सहनशीलता, अध्यवसाय, शान्ति, स्थिरता, आत्म-संयम आदि सभी ऐसे गुण हैं जो सुन्दर भाषणों की अपेक्षा अनन्तगुना अधिक अच्छे रूप में अपने उदाहरण के द्वारा सिखाये जाते हैं।

११. तुम चाहे जो कुछ करो, तुम्हारा व्यवसाय और कार्य जो भी हों, अपनी सत्ता के सत्य को पाने और उसके साथ युक्त होने का तुम्हारा

संकल्प हमेशा ही जीवन्त बना रहना चाहिये।

१२. तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार तथा निष्काम। तब तुम्हारा जीवन तुम्हारे अपने लिए और दूसरों के लिए भी बहुमूल्य हो जायेगा।

१३. सुखी और शान्त होने का सबसे अच्छा उपाय है, हमेशा गहराई और तीव्रता के साथ भगवान् के प्रति पूर्ण कृतज्ञता का अनुभव करना।

१४. बचपन के स्वप्न बड़ी अवस्था की वास्तविकताएँ होते हैं।

१५. तूफ़ान में शान्ति, प्रयास में अचञ्चलता, समर्पण में आनन्द, आलोकमयी श्रद्धा और तुम प्रभु की सतत उपस्थिति के बारे में अभिज्ञ हो जाओगे।

१६. गायत्री मन्त्र सत्ता के सभी लोकों में सत्य की ज्योति को ले आने का मन्त्र है।

१७. धन को खोजने वाले या रखने वाले अधिकतर उसके स्वामी नहीं, दास ही होते हैं।

१८. एकमात्र भगवान् से प्रेम करो और भगवान् हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे।

१९. अपनी समस्याएँ भगवान् को सौंप दो और 'वे' तुम्हें सभी कठिनाइयों से बाहर निकाल लेंगे।

२०. जो लोग 'सत्य' के अनुसार जीना चाहते हैं, उनके लिए हमेशा कुछ सीखने के लिए, कुछ प्रगति के लिए होता ही है।

२१. जितना हो सके चञ्चल और अधीर होने से बचो, क्योंकि स्थिरता और शान्ति में ही 'भागवत कृपा' की शक्तियाँ अधिकतम कार्य करती हैं।

२२. भगवान् के चिन्तन का वैभव कितना शान्त, उदात्त और पवित्र होता है!

२३. ... यह समझने की कोशिश करो कि तुम क्यों जीते हो और यह सीखने की कोशिश करो कि किस तरह जीना चाहिये; इस पर विचार करो कि तुम क्या करना चाहते हो और क्या करना चाहिये; 'अज्ञान', 'मिथ्यात्व' और दुःख, जिसमें तुम जीते हो, उससे बच निकलने का उत्तम उपाय क्या है।

२४. कभी मत बुड़बुड़ाओ। जब तुम बुड़बुड़ाते हो तो तुम्हारे अन्दर सब तरह की शक्तियाँ घुस जाती हैं और तुम्हें नीचे खींच लेती हैं। मुस्कुराते रहो।

मुस्कान इस श्रद्धा को प्रकट करती है कि कोई भी चीज़ भगवान् के विरुद्ध खड़ी नहीं रह सकती और अन्त में हर चीज़ ठीक निकलेगी।

२५. कभी चिन्ता न करो।

तुम जो करो सच्चाई के साथ करो और परिणाम भगवान् की देख-रेख में छोड़ दो।

२६. घमण्ड : प्रगति में बहुत बड़ी बाधा।

अगर तुम जो हो उससे सन्तुष्ट नहीं हो तो भगवान् की सहायता का लाभ उठा कर अपने-आपको बदलो। अगर तुम्हारे अन्दर बदलने का साहस नहीं है तो अपनी नियति के आगे झुक जाओ और चुप रहो। लेकिन तुम जिन परिस्थितियों में हो उनके बारे में हमेशा शिकायत करते रहना और उन्हें बदलने के लिए कुछ न करना तुम्हारे समय और तुम्हारी ऊर्जा की बरबादी है।

कठिनाइयाँ तभी ग़ायब हो सकती हैं जब कामनाओं और सुविधाओं पर अहंकारमूलक एकाग्रता ग़ायब हो जाये।

२७. स्वार्थपरता और आत्म-दया से कोई लाभ नहीं होता। ज़्यादा अच्छा है कि तुम इन दोनों से पिण्ड छुड़ा लो—क्योंकि यही दो संकीर्ण गतिविधियाँ तुम्हें भगवान् की सहायता और उनके प्रेम का अनुभव करने से रोकती हैं।

२८. प्रश्न : १. साधना तथा २. मन की नीरवता के लिए कौन-से क़दम उठाने चाहियें?

उत्तर : १. साधना की तरह काम करो। अपनी क्षमता के अनुसार अच्छे-से-अच्छा काम करो और उसे भगवान् को अर्पित कर दो। परिणाम भगवान् पर छोड़ दो। २. मस्तिष्क को अधिक-से-अधिक नीरव रखते हुए सिर के ऊपर सचेतन होने की कोशिश करो। अगर तुम सफल हो जाओ तो उसी स्थिति में काम करो और वह पूर्ण होगा।

२९. प्रगति के लिए **हर एक चीज़** का उपयोग किया जाता है; **हर चीज़** उपयोगी हो सकती है, अगर हम यह जानें कि उसका उपयोग कैसे किया जाये।

गुह्य ज्ञान

यदि तुमको गुह्य ज्ञान प्राप्त हो तो तुम औरों को भी रास्ता दिखा सकते हो और उनके चारों ओर एक प्रभा-मण्डल, एक ठोस और संकेन्द्रित चेतना फैला सकते हो जिससे उन्हें मार्गदर्शन मिल सकता है। यह अन्य व्यक्ति के जाने बिना या उसके सचेतन प्रयास के बिना भी हो सकता है। जब तुम गुह्य ज्ञान पर आ पहुँचते हो तो तुम औरों की असीम सहायता कर सकते हो। तुम घटनाओं को बदल सकते हो, उनसे बच भी सकते हो।

गुह्य ज्ञान बुरा नहीं होता, धन ही की तरह अपने-आपमें वह बुरा नहीं होता। लोग उसका दुरुपयोग करके उसे बिगाड़ देते हैं। अगर तुम यह सोच कर चीज़ों को त्यागने लगो कि वे बुरी हैं तो तुम कभी प्रगति न करोगे। अगर तुम निष्काम हो, अगर तुम भगवान् के सम्पर्क में हो तो तुम इस ज्ञान का दुरुपयोग नहीं कर सकते।

मैं तुमको एक घटना सुनाता हूँ और वह इसलिए कि तुमको यह पता लगे कि ये सच्ची घटनाएँ हैं, कपोल-कल्पनाएँ नहीं। यह तब की बात है जब मैं आश्रमवासी नहीं बना था, पर समय-समय पर आश्रम आया करता और माताजी से मिला करता था। मैंने माताजी से कहा, "माँ, मेरी मौसी को लकवा मार गया है। वे बिस्तर पर हिल-डुल भी नहीं सकतीं। क्या योग उनके लिए कुछ कर सकता है? क्या मैं कोई सहायता कर सकता हूँ?" माताजी ने मुझे एक मन्त्र बतलाया और उसे अपने हाथ में अंगूर रख कर जपने के लिए कहा और फिर अंगूर खिला देने को कहा और कुछ आह्वान करने के लिए कहा। मैंने ऐसा ही किया और अंगूर मौसी को दे दिये। मौसी ने अंगूर एक प्याले में रख देने के लिए कहा। वह उन्हें बाद में खाने वाली थीं। जब मैं शाम को घर लौटा तो देखा, उन्होंने वे अंगूर अपने पोते को दे दिये थे। मैंने सोचा कि यह उनके भाग्य की बात है जिसने इस तरह काम किया है। मैंने अनुभव किया कि मैंने भूल की, मुझे उनको अपने सामने खिलाना चाहिये था क्योंकि वे अपने-आप उस चेतना में न थीं जहाँ से उचित प्रेरणा पा सकतीं। मैं यह घटना यह बतलाने के लिए कह रहा हूँ कि अगर तुम उच्चतर चेतना से काम करना चाहते हो

तो तुमको उस पर पूरा ध्यान देना चाहिये अन्यथा दूसरे व्यक्ति की भूल से सारे किये-कराये पर पानी फिर सकता है। मैंने सोचा, चलो देखें, क्या इन्हें माताजी और श्रीअरविन्द की चेतना के सम्पर्क में रखा जा सकता है जो उनकी रक्षा करे। डॉक्टर ने तो कह दिया था कि वे अधिक-से-अधिक तीन सप्ताह बच सकती हैं। माताजी ने मुझे बहुत-सा काम सौंप दिया था और मुझे कुछ दिनों के लिए उनसे छुट्टी लेनी पड़ी। मैंने माताजी की बतायी हुई विधि से काम लिया और मेरी मौसी तीन वर्ष तक बनी रहीं, उनकी हालत कुछ अच्छी हो गयी। वे थोड़ा-बहुत खा सकती थीं। मैंने अनुभव किया कि यह चेतना ही उन्हें बनाये रख सकी। मेरी मौसी बम्बई में थीं। एक दिन जब मैं कलकत्ते में था, शाम के लगभग चार बजे होंगे, मैं किसी मित्र के घर पर बैठा था पर मेरा ध्यान मौसी पर लगा था और मैंने अपने-आपसे कहा, "बेचारी बहुत भुगत चुकीं अब चल बसें तो कोई हर्ज़ नहीं, अब मैं उनके साथ सम्बन्ध न रखूँगा।" मैं पाँच बजे घर पहुँचा और बम्बई से फोन आया कि मौसी चार बज कर दस मिनट पर चल बसीं। अब देखो, यह चीज़ कैसे होती है। जब तक इच्छा-शक्ति बनी रही उसने मौसी को बनाये रखा। ऐसा लगा कि उस दिन चार बजे भगवान् ने मानों मुझसे अनुमति, मेरी स्वीकृति ले ली और यह कहा—"इस व्यक्ति के लिए ज़्यादा अच्छा चले जाना होगा, तुम क्यों प्रतिरोध करते हो।" तब वे चल बसीं।

एक दृष्टिकोण से निचले स्तर से मनुष्य को बहुत स्वाधीनता होती है परन्तु उसमें से अधिकतर काल्पनिक होती है। दूसरी ओर, अगर तुम यह स्वीकार कर लो कि भगवान् हर चीज़ में हैं, वे ही हर चीज़ के लिए इच्छा करते हैं तो बात अलग हो जाती है, स्वाधीनता तो होती है पर और तरह की। हमें यह मान लेना चाहिये कि चीज़ें हमारे लिए, हमारे देश के लिए, मानवजाति के लिए बदली जा सकती हैं। हममें से हर एक को दुनिया में—चाहे जितनी भी मामूली क्यों न हो—एक विनम्र भूमिका अदा करनी है और जिनका माताजी और श्रीअरविन्द के साथ सम्बन्ध है उनकी एक विशेष ज़िम्मेदारी है। उदाहरण के लिए, जब कोई बीमार हो तो डॉक्टर की ज़िम्मेदारी ज़्यादा होती है। सबसे अच्छा उपाय यह होता है कि सदा अतिमानसिक चेतना की ओर खुले रहने की कोशिश करो, उसे अपने

अन्दर ग्रहण करो, अपने अन्दर आत्मसात् करो, उसके प्रति समर्पण करो, और उसके यन्त्र बन जाओ ताकि वह सर्वोत्तम रूप से तुम्हारे अन्दर, तुम्हारे द्वारा और तुम्हारे चारों ओर काम कर सके। यह सतत विकास ही सर्वोत्तम है, केवल आध्यात्मिक ढंग से ही नहीं, भौतिक ढंग से भी सर्वोत्तम है। इससे अच्छा उपाय कोई नहीं है।

अगर तुम गंगा जाकर गंगा के संसर्ग में न आओ तो यह ऐसा ही है जैसे माताजी-श्रीअरविन्द के सम्पर्क में आकर अतिमानस के सम्पर्क में न आओ—तो तुम जीवन का एक बहुत बड़ा अवसर खो बैठते हो।

(क्रमशः)

—नवजातजी

फूलों जैसे हम बन जायें

(बच्चों के लिए रचित गीत)

नयी चेतना ख़ुद में जगाएँ,
होठों पर मुस्कान सजाएँ,
सभी काम में लगन लगाके,
जीवन को ख़ुशहाल बनायें,
फूलों जैसे हम बन जायें, फूलों जैसे हम बन जायें।।

मन विशाल हो नील गगन-सा,
धीरज धरती-सा रख पायें,
मुक्त पवन ज्यों प्यार बाँट कर,
हर आँगन को स्वर्ग बनायें,
फूलों जैसे हम बन जायें, फूलों जैसे हम बन जायें।।

अतिमानस से नव प्रकाश लें,
धरती के दीपक बन जायें,
शीतल जल निर्मल धारा ज्यों,
हर दिल की राहत बन जायें,
फूलों जैसे हम बन जायें, फूलों जैसे हम बन जायें।।

—शारदा गोयनका

शाश्वत ज्योति

(२)

हम आश्रम की वरिष्ठ साधिका चित्रा सेन—हमारी प्रिय चित्रा दी—की डायरी में अंकित श्रीमाँ की बातचीत बीच-बीच में दे रहे हैं। स्वयं चित्रा दी के शब्दों में सुनिये—

'इस वार्तालाप में माताजी की अधिकांश बातें मेरी डायरी से हैं। हम उनके साथ जो भी बातचीत करते थे, उन्हें यथासम्भव ईमानदारी से लिख लेते थे। यह वार्तालाप माँ के द्वारा न तो देखा गया है और न ही सुधारा।'

यहाँ मैं बचपन में ही आ गयी थी। मैं कभी-कभी उनके साथ बातचीत किया करती थी। एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा—उस वक़्त मैं १५ या १६ वर्ष की थी—"तुम क्यों पढ़ रही हो?" अब, एक बच्चा इसका क्या उत्तर दे? "ऐसे ही, माँ।" तब उन्होंने मुझसे कहा, "व्यक्ति को तब तक कुछ करने की ज़रूरत नहीं होती जब तक वह उसे करना पसन्द न करे या वह यह महसूस न करे कि वह अमुक तरीक़े से ख़ुद को अभिव्यक्त करना चाहता है।" वे हमें विकसित करना चाहती थीं। उन्होंने कहा, "तुम्हें सिर्फ़ इसलिए पढ़ने की ज़रूरत नहीं है कि यही पुराना तरीक़ा है। अपने मस्तिष्क के कुछ हिस्सों को विकसित करने के लिए सीखना ज़रूरी होता है, लेकिन व्यक्ति यहाँ कुछ और करने के लिए आया है—अपने-आपको जानने के लिए। अपने-आपको अभिव्यक्त करने के कई तरीक़े होते हैं।"

मेरे कुछ मित्र पढ़ाई में बहुत नियमित थे, उन्होंने हर घण्टे का अपना कार्यक्रम बना रखा था, जिसका वे बहुत सावधानी से अनुसरण करते थे। मैंने ऐसा कभी नहीं किया और मुझे लगता था कि मैं कुछ नहीं कर रही हूँ। तो मैंने जाकर माँ से पूछा, "मेरे जीवन को व्यवस्थित करने के बारे में आपका क्या विचार है?" "तुम्हारा मतलब है, तुम्हारा दैनिक समर्पण?" उन्होंने पूछा। मैंने कहा, "जी, माँ।" उन्होंने कहा, "यह कोई बाह्य वस्तु नहीं है। यह आन्तरिक गति है। अगर कोई अध्ययन करता है तो उसे उच्च पद पाने या विख्यात होने इत्यादि की बात नहीं सोचनी चाहिये। एक आन्तरिक मनोभाव होना चाहिये : 'मैं अध्ययन करता हूँ ताकि भगवान्

मुझसे जो करवाना चाहें उसे करने में मैं समर्थ बनूँ।' हर सुबह जब तुम उठो, यह कहो कि मैं जो भी करूँ वह भगवान् के लिए करूँ। तब तुम देखोगी कि तुम्हारे कुछ हिस्से विरोध कर रहे हैं। ये हिस्से तुम्हें धीरे-धीरे हटाने होंगे।" तब उन्होंने चेतावनी दी, "कठोरता से नहीं, कोमलता से, बिना परेशान हुए, उन्हें सावधानी से हटाना चाहिये, बहुत प्रेम से, कोमलता से। तुम समझ रही हो?" मैंने कहा, "सचमुच नहीं, माँ।" "कुछ समय बाद, हम फिर से इस पर बातचीत करेंगे," उन्होंने जोड़ा, "और तुम समझ जाओगी।" उस समय उन्होंने मुझसे यह भी कहा, "तुम्हारे भौतिक शरीर को काम की ज़रूरत है।" मुझे "फ़्लावर रूम"—बच्चों के विद्यालय—में काम दिया गया। मैं यह सब चीज़ें क्यों बता रही हूँ? सिर्फ़ यह दिखाने के लिए कि कैसे उन्होंने एक किशोरी की सत्ता के हर हिस्से को ध्यान में रख कर उसे बड़ा किया।

मैं नक़्क़ाशी का काम किया करती थी। मैं 'Jigsaw puzzles' भी बनाती थी और फिर माँ को उन्हें अर्पित कर देती थी। और तुम जानते हो, ये 'पज़ल्स' वे ऊपर रखती थीं। और पूजालालजी, लल्लूभाई इत्यादि, जो ऊपर काम करते थे, अपना काम पूरा कर लेने के बाद वहाँ बैठ कर उन पहेलियों को सुलझाते। एक दिन माँ ने मुझे दो बड़े चित्र देकर कहा, "तुम इन्हें एक दफ़्ती पर दोनों तरफ़ लेई से चिपकाना, फिर सूख जाने पर इन्हें काट देना। तब जो उन टुकड़ों को जोड़-जोड़ कर चित्र पूरा करने का खेल खेलेंगे उन्हें ज़्यादा दिमाग़ लगाना पड़ेगा!" बाद में उन्होंने मुझसे कहा, "मैं तुम्हें ऐसी पहेलियों के काम में क्यों प्रोत्साहित करती हूँ भला? क्योंकि यह हाथों के प्रशिक्षण के लिए है ताकि हाथ आँखों का अनुसरण करके रंगों के ज्ञान को विकसित करें।"

एक और चीज़ जिसके बारे में वे अक़्सर हमसे पूछा करती थीं वह थी—सपने। वे हमसे पूछतीं, "पिछली रात तुमने क्या सपना देखा?" हम अपने सपने उन्हें सुनाते। कभी-कभी हमें रोचक सपने आते तो हम अपने-आप ही जाकर उन्हें सुना आते। और वे हमें सपनों का अर्थ समझातीं। वह इतना महत्त्वपूर्ण क्यों था, वे हमें समझातीं और उन्होंने हमें यह बारम्बार बतलाया था कि आमतौर पर नींद का अर्थ होता है—अवचेतना में गिर जाना, लेकिन उस हिस्से में भी जागरूकता आनी चाहिये। जैसे तुम दिन

के समय सचेतन होने की कोशिश करते हो, तुम्हारी रातें भी समान रूप से सचेतन होनी चाहियें। और इसके लिए पहला क़दम यह है कि तुम्हें अपने सपने याद रखने चाहियें। यह एक लम्बी प्रक्रिया है। लेकिन एक बार तुम अपने सपनों को याद रख पाओगी तो धीरे-धीरे तुम अपनी रातों पर नियन्त्रण रख पाओगी। फिर तुम स्वतन्त्र रूप से इधर-उधर घूम सकती हो और जो चाहो कर सकती हो। उन्होंने नींद के बारे में काफ़ी चीज़ें बतलायी थीं। वे बार-बार कहा करती थीं, "तुम्हें आराम करना चाहिये। अपने मन में उत्तेजित मत रहा करो।" मेरी हमेशा से सोने से पहले कुछ पढ़ने की आदत थी। उन्होंने कहा, "नहीं। होता क्या है कि जब तुम पढ़ कर तुरन्त सोने जाओ तो तुम्हारा भौतिक शरीर भी सोने चला जाता है, लेकिन तुम्हारे मस्तिष्क की कोशिकाएँ काम करती रहती हैं। तुम्हें उसे शान्त करना चाहिये। इसलिए सोने से पहले तुम्हें विश्राम करना चाहिये। अपने-आपको शिथिल करो, अपने शरीर के हर हिस्से को, एक-एक करके या सभी को एक साथ। फिर अपने मन को, विचारों को शान्त करो, उसके बाद अपने-आपको अन्दर एकत्रित करो। तुम्हें एक लत्ते की तरह बन जाना चाहिये। तुम्हारा पूरा शरीर बिस्तर पर लेटा हुआ है। उसे यहाँ ऊपर एकत्रित करो, *(माँ हृदय-क्षेत्र की ओर इशारा करती हैं)*। उसके साथ अगर अभीप्सा भी जोड़ सको तो सोने में सुहागा। अगर तुम यह न भी कर सको तो कोई बात नहीं। इसे करो और उस क्षण और नींद के बीच के संक्रमण को तुम सहज, स्वचालित और स्वाभाविक रूप से होने दो।" सच, बढ़िया नींद ले पाना बहुत महत्त्वपूर्ण है, तब व्यक्ति सपने भी याद रख सकता है।

(क्रमशः) अनु. वीणा

माँ, पिछली रात मैंने दुःस्वप्न देखा था और मैं डर-सा गया।

तुम्हें कभी डरना न चाहिये। नींद में भी तुम्हें मुझे याद रख सकना चाहिये और अगर कोई ख़तरा हो तो अपनी सहायता के लिए मुझे बुलाना चाहिये। तुम देखोगे कि दुःस्वप्न ग़ायब हो जायेंगे।

श्रीमाँ

पल-पल सीखना

तब मैं बच्ची थी, एक दिन यूँ ही बैठी थी कि प्रभु ने आकर मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया। प्रभु का इस तरह हाथ थामना मेरे लिए पहला अवसर न था।

"क्या सोच रही हो बिटिया?" मुझे इसी तरह पुकारा करते थे वे।

"यही कि हम सब आपकी सन्तान हैं प्रभु, आप हमें जीवन में क्या शिक्षा देना चाहेंगे ताकि हम सब बिना लड़ाई-झगड़े के ख़ुशी-ख़ुशी रह सकें। यानी, कम-से-कम झगड़ें।"

"मेरी बिटिया बड़ी हो रही है", प्रभु ने मेरी पीठ सहलायी, फिर बोले, "अभी के लिए दो-चार बातें बताता हूँ, उन्हें ही धरतीवासी कर सकें तो धरती बदल सकती है।"

"बताइये, बताइये प्रभु! मैं बड़ी देर से इसी सोच में डूबी हूँ।" मैं लपक कर बोली।

प्रभु मुस्कुराये—एक तो यह कि कोई तुमसे प्यार करे, न करे, अपने-आपको छोड़ दो, बहने दो, मैं तुम सबको अपनी छाती से लगा लूँगा।

यह सीखना कि तुम अपनी धन-दौलत से अमीर नहीं बनते, बल्कि सच्चा अमीर वह है जिसकी ज़रूरतें कम-से-कम होती हैं।

यह सीखना कि किसी के घाव कुरेदने में पलक झपकने-भर का वक्त लगता है, लेकिन उन्हें पूरने में कई साल लग जाते हैं और फिर भी निशान नहीं मिटता।

यह सीखना कि माफ़ करने की कला का अभ्यास ज़िन्दगी-भर करते रहना चाहिये।

यह सीखना कि ऐसे कई हैं जो तुमसे बेहद प्यार करते हैं, लेकिन अपने प्यार को जताने, शब्दों में प्रकट करने में हिचकिचाते हैं...।

यह सीखना कि पैसा ख़ुशी के सिवाय बाक़ी सब कुछ ख़रीद सकता है।

यह सीखना कि दो व्यक्ति एक ही चीज़ को दो बिलकुल अलग नज़रिये से देख सकते हैं और दोनों ही ठीक हो सकते हैं।

यह सीखना कि सच्चा दोस्त वही है जो तुम्हारी सभी ख़ूबियों-ख़ामियों को अच्छी तरह जानता है, और तुम जैसे हो तुमसे प्यार करता है; लेकिन

साथ ही तुम्हें ग़लत रास्ते पर जाने से टोकता है।

प्रभु मुझसे बतियाते रहे—बिटिया, मैं तुम्हें सारी ज़िन्दगी "यह सीखना ... और यह सीखना..." बतला सकता हूँ और इसके लिए बस तुम्हें इतना भर करना होगा कि किसी भी काम को करने से पहले आँख मूँद कर अपने हृदय के दरवाज़े पर हलकी-सी दस्तक देकर मुझे गुहार लगा दो, मैं झट तुम्हारे रास्ते से अँधियारा हटा दूँगा। रात-दिन, दिन-रात मैं तुममें से हर एक के लिए, हर एक के अन्दर पलकें बिछाये इन्तज़ार में रहता हूँ कि कब पुकार उठे और मैं प्रकट होऊँ!! लेकिन...

"लेकिन क्या प्रभु!" मैं चौंकी।

"लेकिन बिटिया, यही कि धरतीवासी अपने हृदय का, यानी मेरा दरवाज़ा खटखटाना ही भूल जाते हैं, सारी-सारी ज़िन्दगी ईंट-पत्थर-गारे से बनी जगहों पर मुझे ढूँढ़ते ही रह जाते हैं।"

मैंने अपने प्रभु का हाथ कस कर पकड़ कर कहा—"भगवन्! इसका मतलब तो यह हुआ कि हम सीधा-छोटा रास्ता छोड़ कर घुमावदार, टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर यूँ ही भटकते रह जाते हैं!"

प्रभु ने लम्बी उसाँस छोड़ी। मैं मुरझा गयी। मेरा कुम्हलाया चेहरा देख वे मुझे अपनी गोदी में बिठा कर बोले—"देखो बिटिया, दीये से दीया जलता है। तुम्हारे हृदय की लौ जल उठी तो तुम इसी लौ से दूसरे हृदयों को बालो।"

मैं चहक उठी। मेरे प्रभु ने मुझे ज़िन्दगी का कितना सरल, कितना गहरा, कितना अचूक नुस्ख़ा पकड़ा दिया था—

हर एक, हर पल अपने हृदय-प्रभु के सुझाये रास्ते पर चल सके तो दुनिया में 'लेकिन' का अस्तित्व मिट जायेगा।

'अग्निशिखा', दिसम्बर २०१० से —वन्दना

जब-जब तुम्हारा हृदय साथ चाहे, प्रभु के संग-संग चलो। जब कभी अकेला महसूस करो, उनका हाथ कस कर धर लो। जब कभी सहारे की ज़रूरत हो, उन्हीं की टेक लो।

वे ही हैं तुम्हारे 'वे' जो हमेशा तुम्हें बाँहों में थामे रखना चाहते हैं।

वक़्त की ज़रूरत

एक छाँह रोपता हूँ मैं और बीजता हूँ एक सपना
मैं, ख़ुशगवार सपनों का हरकारा
आँखों में आँजता हूँ, सच्चे सुनहरे दिन।

इस अँधेरी रात में
रोशनी का एक जुगनू ही सही
एक लौ को देर नहीं लगती सूर्य बनने में।

किसी दिन तुम्हारे घर भी आऊँगा ज़रूर
ले के फूल मोहब्बत के, तुम्हारे दिलों को सजाऊँगा
वक़्त को इस पहल की ज़रूरत है
तुम्हें भी है यह ज़रूरत, और मुझे भी।

'मधु-सञ्चय' से साभार —श्री ओमप्रकाश मेहरा

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तें स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत
सम्पादक : वन्दना
स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८
Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org

अनन्त समुद्र के परे, नीरवता के शिखरों पर,
अग्निशिखा थामे,
उतरे वे स्वर्ण पुरुष,
जगत् को निहारा उन्होंने, ताकि उनकी महानता और उद्वेग
निर्मुक्त हो बह उठें उसमें।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA
INTERNATIONAL SCHOOL,
110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF
EDUCATION
An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION

SRI AUROBINDO
INTERNATIONAL SCHOOL
(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

SRI AUROBINDO SCHOOL OF
INTEGRAL EDUCATION
1-A, Sector 27A,
Madhya Marg,
Chandigarh
Email:sasoie@yahoo.co.in

Date of Publication: 1st February 2024
Rs. 30 (Monthly)

अग्निशिखा एवम् पुरोधा, फ़रवरी २०२४, वर्ष १, अंक ७, पूर्णांक ७
प्रकाशक स्थल: सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

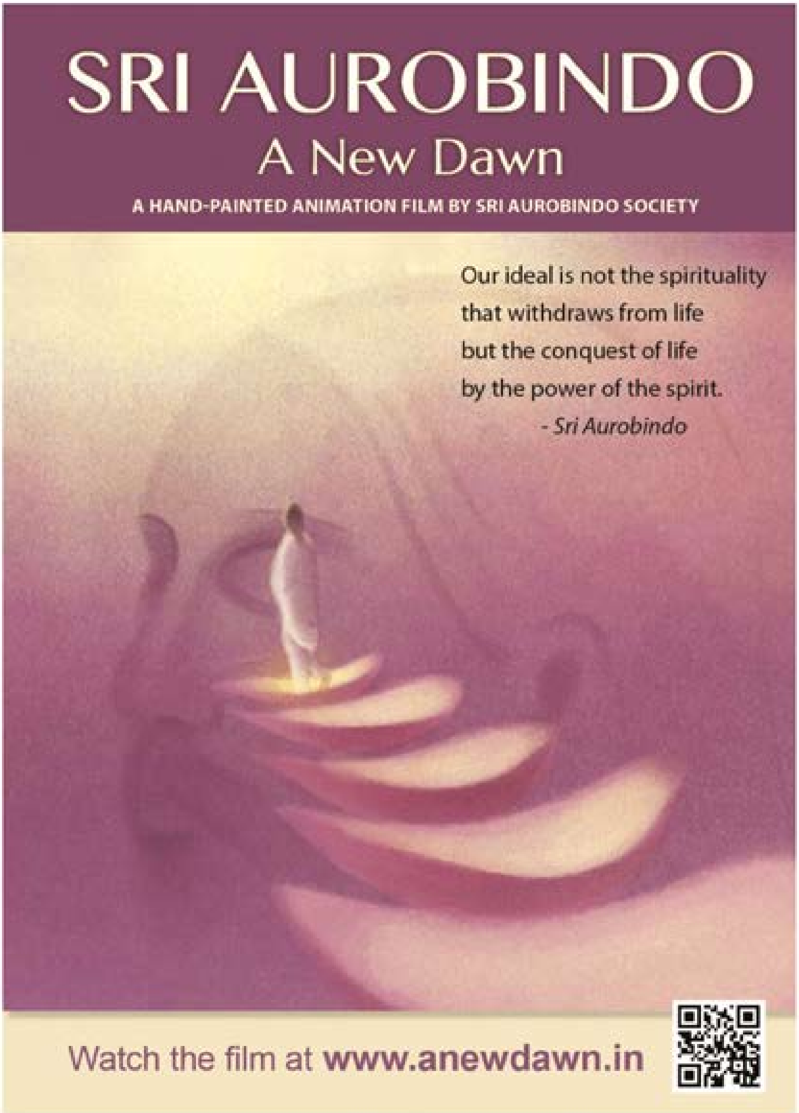

SRI AUROBINDO
A New Dawn
A HAND-PAINTED ANIMATION FILM BY SRI AUROBINDO SOCIETY

Our ideal is not the spirituality
that withdraws from life
but the conquest of life
by the power of the spirit.
- *Sri Aurobindo*

Watch the film at **www.anewdawn.in**